समुदाय व संरक्षण

समुदाय आधारित जैवविविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा

अंक ९, नं. १ दिसंबर २०१७ - मई २०१८

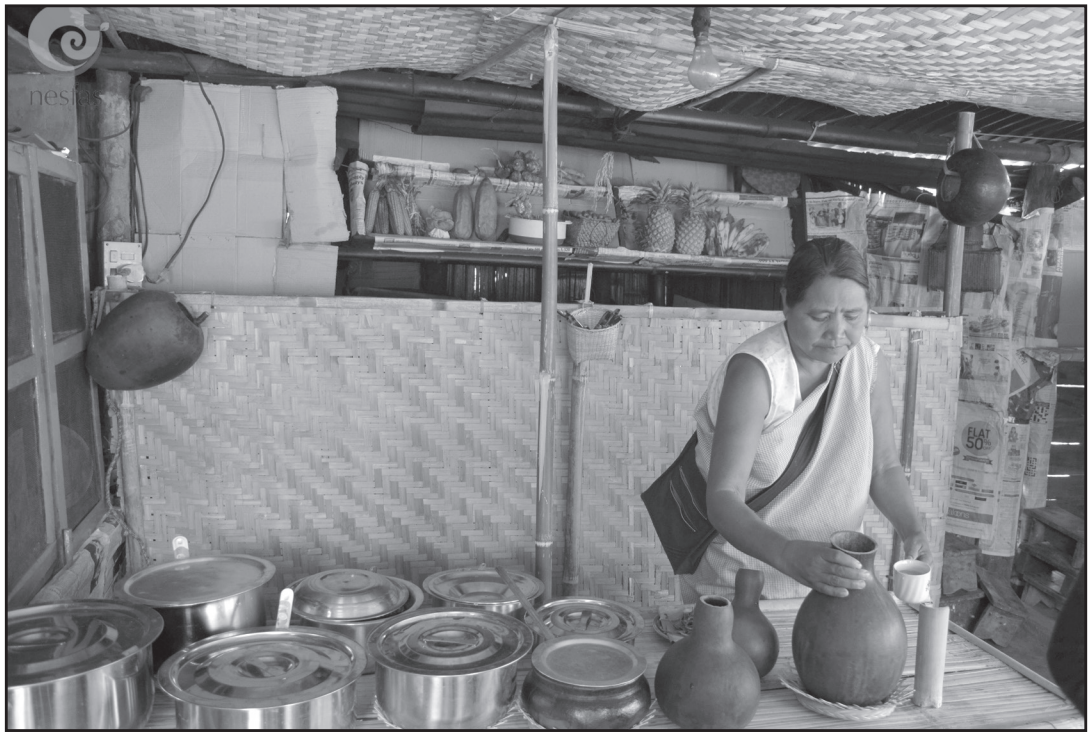

विषय सूंची

प्रारंभिक विचार

१. समाचार और कहानियां

- महाराष्ट्र के पहाड़ी रेलवे स्टेशन हुए हरे
- हासन पानी के तालाब का कायाकल्प
- शहरी – ग्रामीण के फर्क़ को कम करने का प्रयास
- प्रत्यक्ष बिक्री, आदिवासियों की तरह
- मैंने हरा रास्ता चुना है!

२. दृष्टिकोण

- प्रबुद्ध मंडल और आश्रम
- लेखा परीक्षक के रूप में आम लोग

३. विकल्पों की कल्पना

- शिक्षा की पुन: परिकल्पना का सफ़र – मनीश जैन के साथ बातचीत

४. उम्मीद के प्रतीक

- उरलुंगल – भारत का सबसे पुराना मज़दूर सहकारी संघ
- छोटे सतत प्रयासों से औरतों के जीवन में बड़े बदलाव

५. विशेष लेख : प्रतिरोध के रूप में विकल्प

- ऐक्ट वन – बांध विरोधी, लोक समर्थक

विकल्प पर विशेष अंक

प्रारंभिक विचार

पूंजीवादी मूल्यों पर आधारित एक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को उचित ठहराने के लिए ब्रिटेन की पूर्व प्रधानमंत्री मार्ग्रेट थैचर द्वारा दिए गए नारे 'देयर इज़ नो ऑलटरनेटिव' (कोई और विकल्प नहीं है) को, उग्र बदलाव के लिए काम कर रहे कार्यकर्ता अक्सर उसके ठीक उल्टे मतलब पर ज़ोर देने के लिए इस्तेमाल करते हैं – कि न सिर्फ़ वर्तमान पूंजिवादी व्यवस्था (या अव्यवस्था!) का कोई विकल्प नहीं है, बल्कि यह इसे वास्तविकता में लाने के लिए ज़रूरी है।

यह समझना ज़रूरी है कि ऐसा करना क्यों ज़रूरी है।

उग्र बदलाव की आवश्यकता के पीछे एक कारण है कि वर्तमान व्यवस्था विरोधाभासों और अति से भरी हुई है – अभाव के महासागर के बीच अमीरी की नदियां, मुनाफ़े का निजिकरण और नुक्सानों का सामाजिकरण, अस्तित्व के अत्यंत अकेलेपन के बीच संचार का वैश्वीकरण, समुदायों के विनाश की कीमत पर व्यक्ति विशेष का महिमामंडन, एक ओर सुथरे परिदृश्य और दूसरी ओर प्राकृतिक आवास और जैवविविधता की हानि, जंगली इलाकों के बीच में शहरी कंक्रीट निर्माण, सुरक्षित आवास और सामाजिक–राजनैतिक हिंसा, धार्मिक कट्टरवाद जिसमें कोई आध्यात्मिक दृष्टि नहीं है, आज के तकनीकी विकास के ज़माने में पलती अंधविश्वास पर आधारित आस्था, आदि। गरीबी, बेरोज़गारी, विभिन्न क्षेत्रों में फैली अशांति, सामाजिक अशांति, जेन्डर असमानता, अस्तित्व का अकेलापन, आध्यात्मिक अलगाव, और पारिस्थितिकीय विनाश इस पूंजिवादी सामाजिक व्यवस्था की कुछ अभिव्यक्तियां हैं। हमारे सामने सवाल यह है कि ऐसी स्थिति में उग्र बदलाव कैसे आएगा। बहुत संक्षेप में, इसके लिए हमें पहले बताए गए विरोधाभासों का इस प्रकार समाधान निकालना होगा जो न केवल मानवता को शक्ति और सत्ता के तुल्यात्मक पुनः बंटवारे, पारिस्थितिकीय सततता, सामाजिक न्याय और कल्याण, जेन्डर समानता, सांस्कतिक बहुलता की गांरटी देने वाली सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था की ओर काम करने के लिए प्रेरित करे, बल्कि एक ऐसी दुनिया भी सुनिश्चित करे जहां मनुष्यों की भावनात्मक, बौद्धिक क्षमताएं और आध्यात्मिकता प्रकृति के अधिकारों की सुरक्षा के साथ फल–फूल सके। इसके परिणामस्वरूप ही, जिसे हम पारिस्थितिकीय संस्कृति, उग्र पारिस्थितिकीय लोकतंत्र और पारिस्थितिकीय–समाजवाद कहते आए हैं, उसे प्राप्त किया जा सकता है।

अगर हम इस बात से सहमत हैं, तो अगला सवाल यह उठता है कि इसे कैसे लाया जाए? इतिहास हमें सिखाता है कि इसके लिए हमारे पास कोई बना–बनाया खाका नहीं है, जो बता सके कि पृथ्वी पर स्वर्ग को कैसे स्थापित किया जा सकता है। सोवियत रिपब्लिक की असफलता ने दर्शाया है कि आदर्शवादी कल्पना में कितने खतरे हैं खासकर अगर हम उसके प्रति फार्मूलाबद्ध दृष्टिकोण से काम करने की कोशिश करते हैं। असल में, इससे सर्वाधिकारी सत्ता बन सकती है, जिसमें मानव अधिकारों या प्रकृति के अधिकारों के लिए कोई परवाह नहीं होती, हांलाकि इसके अंतर्गत, पूंजिवाद के मुकाबले कुछ मौलिक अधिकार ज़रूर दिए जाते हैं जैसे शिक्षा, आवास, रोज़गार और स्वास्थ्य। तो हमने सीखा/अहसास किया है कि ऊपर बैठ कर, नेतृत्व करने वाली राजनीतिक पार्टी द्वारा लागू की गई नीतियां जिन्हें लोग निष्क्रिय रूप से हर समस्या के सार्वभौमिक एकमात्र हल के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, अब काम नहीं आएंगी।

तो फिर ऐसा सामाजिक बदलाव कौन लाएगा? शायद अब अपने दृष्टिकोण को उलटने का समय आ गया है। ऊपर बैठकर नीचे के लिए नीतियां बनाने के बजाए, क्यों न नीचे से बदलाव लाने की कोशिश की जाए? आखिर, लोगों को ही पता है कि उनके लिए क्या सबसे अच्छा होगा। और अब विश्व भर में ऐसा ही हो रहा है। अब लोग समस्याओं का हल कहीं और से आने का इंतज़ार नहीं करते और न ही उनके महान नेताओं या राजनैतिक पार्टियों या संसद में बैठे चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा अपने जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों को परिभाषित किए जाने का। वे अपने भाग्य को अपने हाथों में लेकर स्थानीय स्तर पर अपने लिए सकारात्मक बदलाव ला रहे हैं। और यह सब वे व्यक्तिगत तौर पर और समुदायों के रूप में कर रहे हैं ... चाहें वह स्वास्थ्य का क्षेत्र हो, या शिक्षा, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन, रोज़गार बढ़ाने या किसी का भी। लोग अपने लिए खुद एक वैकल्पिक भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। पूरे देश में ऐसे कई प्रयोग हो रहे हैं। इनमें से कुछ का संकलन विकल्प संगम की वैबसाइट पर किया गया है (vikalpsangam.org)।

इस संस्करण में इनमें से कुछ प्रयासों को उजागर किया जा रहा है।

मिलिंद

१. समाचार और कहानियां

महाराष्ट्र के पहाड़ी रेलवे स्टेशन हुए हरे

अप्रैल २०१८ में वहां के एक अधिकारी ने बताया कि महाराष्ट्र के रायगड़ जिले में केन्द्रीय रेल के माथेरन पहाड़ी रेलवे के चार रेलवे स्टेशनों पर सोलर और पवन ऊर्जा संयंत्र लगने के बाद वे अब ''हरित'' हो गए हैं। सुनील उदासी, प्रमुख सार्वजनिक संबंध अधिकारी, केन्द्रीय रेलवे ने एक वक्तव्य में कहा कि हरित ऊर्जा प्रणाली स्थापित किए जाने के बाद, तीन स्टेशनों – जुम्मापट्टी, वाटरपाइप और अमन लॉज – पर प्रत्येक इकाई में प्रतिमाह ७५–८० कि.वा.घं ऊर्जा बनाने की क्षमता हो गई है, और माथेरन में ६८०–६९० कि.वा.घं।

इन चारों स्टेशनों पर ५००–१००० डब्ल्यू.पी. (सोलर ऊर्जा संयंत्रों की रेटिंग वॉट्स पीक (डब्ल्यू.पी.) या किलोवॅट पीक (के.डब्ल्यू.पी.) में दी जाती है) के सौर ऊर्जा संयंत्र लगाए गए हैं और माथेरन में ६.१ के.डब्ल्यू.पी. की पवन चक्की भी लगाई गई है, जिसमें ऊर्जा कम इस्तेमाल करने वाली एल.ई.डी. लाइटें और पंखे भी शामिल हैं। अक्षय स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा के कारण इन पहाड़ी रेलवे स्टेशनों का बिजली बिल काफी कम हो जाएगा, जिससे लगभग रु.२.०७ लाख प्रति वर्ष की बचत होगी, और साथ ही उनका कार्बन पदचिह्न भी।

माथेरन पहाड़ी रेलवे महाराष्ट्र में बना छोटी लाइन की हैरिटेज रेलवे है।

पर्यटकों के लिए बेहद रोचक और मुंबई के लोगों के लिए गर्मी की छुट्टियों में जाने वाले इस ट्रैक की लंबाई २१ कि.मी. है, जो कि नेरल से माथेरन के बीच के पश्चिमी घाटों के घने जंगलों से गुज़रती है।

स्रोत:https://energy.economictimes.indiatimes.com/news/renewable/maharashtras-toy-train-stationsturn-green/63853382

हासन पानी के तालाब का कायाकल्प

सूखा क्षेत्रों के अध्ययन के लिए बनाई गई एक केन्द्रीय कमिटि द्वारा, कर्नाटक के हासन जिले को राज्य के १६ सबसे सूखा–संभावित जिलों में सूचिबद्ध किया गया था। एक समय में अत्यंत हरा–भरा यह जिला, जो पश्चिमी घाटों से लगता हुआ है, अब सूखा पड़ रहा था। तो हासन के कुछ चिंतित नागरिकों ने पूछताछ शुरु की। महाराष्ट्र की संस्था, पानी फाउन्डेशन के बारें में पढ़ने के बाद, कुछ एकमत लोगों ने मिलकर हसिरू भूमि प्रतिष्ठान की स्थापना की, जिसमें १९ ट्रस्टी हैं, और उसका नेतृत्व एक स्थानीय अखबार, जनता माध्यम के संपादक आर.पी. वेंकटेश मूर्ति करते हैं।

इस प्रयास के परिणामस्वरूप, २०१७ में कम–से–कम २८ कल्याणी (पारंपरिक पानी के टैंक) और चार पानी के टैंकों में फिर से पानी आ गया।

स्रोत : https://bangaloremirror.indiatimes.com/news/state/karnataka-tradition-to-therescue/articleshow/64055266.cms

शहरी – ग्रामीण के फर्क़ को कम करने का प्रयास

शहरी – ग्रामीण का फर्क़ (फोटो : मनप्रीत)

विकास संबंधी हमारे अनुभव का एक दुर्भाग्यपूर्ण पहलू है बढ़ता हुआ शहरी – ग्रामीण के बीच का फर्क़। हांलाकि अभी भी कुछ शहरी लोगों ने अपने ग्रामीण घरों से जुड़ाव बनाया हुआ है, तब भी शहरी कुलीन वर्ग ग्रामीण लोगों को प्रभावित करने वाले मुद्दों से कटता और उन्हें नज़रंदाज़ करता दिखता है। जहां एक ओर किसान आंदोलन और उनके प्रति सरकार की प्रतिक्रिया समाचारों में सुर्खियां बन रही हैं, वहीं दूसरी ओर ज़रूरत है एक छोटे, शांत लेकिन सतत प्रयास की, जिससे कि यह शहरी – ग्रामीण फर्क़ कम हो सके और आपसी समझ तथा एक दूसरे के प्रति संवेदनशील होने की भावना बढ़े।

ऐसा एक प्रयास हाल ही में उड़ीसा में शुरु हुआ। अभी यह उसके उद्देश्यों और दोहराए जाने की संभावना की नज़र से एक छोटा प्रयास है, लेकिन इसकी संभावनाएं अपार हैं।

इस प्रयास की शुरुआत लिविंग फार्म्स नाम की एक संस्था द्वारा की गई है, जो दो स्तरों पर काम करती है – रायगड़ जिले के आदिवासी किसानों के साथ और भुबनेश्वर में शहरी ग्राहकों के लिए।

परियोजना संचालक, डॉ. जगतबंधु महापात्रा कहते हैं, ''शहरी लोगों को किसानों की समस्याओं और असल मुद्दों के बारे में बताना ज़रूरी है। उनको वास्तविक समझ और सहानुभूति के आधार पर एकसाथ लाना महत्वपूर्ण है। और यह तभी किया जा सकता है जब सांझे और पारस्परिक हितों के संदर्भ में उन्हें साथ लाया जाए।

स्रोत : https://www.thestatesman.com/opinion/bridging-urban-rural-divide-1502615312.html

प्रत्यक्ष बिक्री, आदिवासियों की तरह

चित्र : रायगड़ के बिसामकटक में, ६० साल पुराने ईसाई अस्पताल के प्रांगण में रविवार जैविक बाज़ार।
फोटो : चित्रांगदा चौधरी

उड़ीसा के एक जैविक बाज़ार में, मध्यम वर्गीय ग्राहकों को उनके लिए खाद्य पदार्थ पैदा करने वालों से बातचीत करने का मौका मिलता है जिसके कारण वे पारंपरिक ज्ञान को समझ और उसकी सराहना कर पाते हैं।

नीतिगत और सार्वजनिक विचारों में, उड़ीसा, विशेषकर उसके दक्षिणी जिले जैसे कि रायगड़ और पड़ोसी जिला कालाहांडी, का नाम लेते ही एक बुरी खबर की आशंका रहती है – ''गरीबी'' और ''पिछड़े'' जैसे शब्दों से चर्चाएं भरी रहती हैं। लेकिन इस पहाड़ी क्षेत्र में अतुल्य पारिस्थितिक और सांस्कृतिक विविधता है और बिसमकटक का साप्ताहिक बाज़ार एक ऐसा प्रयोग है जिसके माध्यम से यहां की पारिस्थितिकीय समझ से परिपूर्ण कृषि परंपराओं को बढ़ावा देने का प्रयास किया जा रहा है। यह बाज़ार ग्राहकों और इन परंपराओं के आधार पर कृषि करने वाले किसानों के बीच जुड़ाव बनाने का भी एक ज़रिया बनाना चाहता है – और इसके माध्यम से कैमिकल–उपयोग, मशीनी और औद्योगिक कृषि, जिसके कारण किसान भूमंडलीकृत बाज़ारों के आघात सहने के लिए मजबूर हो जाते हैं, से परे हटने का मौका देना चाहता है। यहां बिकने वाले उत्पादों में ताज़ी सब्ज़ियों से लेकर दालें, फलियां, हरी सब्ज़ियां और औषधियों के अलावा आदिवासी संस्कृति तथा खानपान के लिए महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ, जैसे कि पौष्टिक मोटे अनाज और कंद भी शामिल हैं। यह सभी अक्सर छोटे खेतों (पांच एकड़ से छोटे) से आते हैं, जहां सिंथेटिक पदार्थो का उपयोग नहीं होता और विविधतापूर्ण फसल के लिए पारंपरिक ज्ञान का इस्तेमाल किया जाता है।

खास बात यह है कि यहां बिकने वाले उत्पाद की दरें खरीददारों और बेचने वालों के बीच चर्चाओं के माध्यम से पहले से ही तय हो जाती हैं, जो सुनिश्चित करता है कि किसानों को उत्पादन की कीमतें मिल जाएं, और मुनाफ़ा भी हो (राष्ट्रीय किसान कमिशिन की लंबे समय की एक संस्तुति जिसे और कहीं भी लागू नहीं किया गया है)।

बिसमकटक किसान बाज़ार के पीछे, उड़ीसा स्थित लिविंग फार्म्स संस्था के देबजीत सारंगी का दिमाग है। उनका कहना है, ''हमारी सोच थी कि हम खरीददार – उत्पादक नेटवर्क स्थापित करें जिससे कि कृषि, और खाद्य सामग्री से जुड़े सामाजिक एवं पर्यावरणीय मुद्दों के बीच जुड़ाव बन सके। इस प्रकार यह बाज़ार 'प्रकृति– कृषि– संस्कृति– समुदाय' के सातत्य को विकसित करता है, और साथ ही प्रत्यक्ष, उचित और सूक्ष्म वितरण श्रृंखला स्थापित करने में मदद करता है।''

महेन्द्र नौरी, एक युवा किसान, का कहना है कि स्थानीय परिवार हायब्रिड बीज, कीटनाशक, या उर्वरक जैसे यूरिया और पोटाश बिल्कुल नहीं खरीदते : ''हम किसान नेटवर्क के ज़रिए अपने खुद के बीजों का संरक्षण और वितरण करते हैं। मेरे परिवार के दो एकड़ के खेत पर, हमने आम के पेड़ के पास एक खाद का गड्ढा बनाया है जिसमें हम खेत की सामग्री से खाद बनाते हैं जिससे मिट्टी के पोषक तत्व पैदा होते हैं। विनाशकारी कीटों के लिए, हम नीम के पत्तों, करेले, शरीफे और नींबू के साथ गोमूत्र का मिश्रण बनाते हैं।'' नौरी का कहना है कि वो जो तरीके इस्तेमाल करते हैं वे उन्हें पीढ़ी– दर–पीढ़ी मिलते आए हैं, जिनमें उन्होंने जैविक खेती की कार्यशालाओं से मिली जानकारी भी शामिल की है।

कई खरीददार इस बाज़ार की ओर खाने में स्वाद, उनके स्वास्थ्य और किसानों के कल्याण के कारणों से आकर्षित होते हैं। शिखा, जो सामुदायिक स्वास्थ्य के मुद्दों पर काम करती हैं, ने कहा कि इस बाज़ार से सामान खरीदने, और विशेषकर, हर रविवार किसानों से बातचीत करके, उनका खाने के बारे में दृष्टिकोण ही बदल गया है। ''इससे मुझमें हम क्या खाते हैं उसके बारे में और ज़्यादा चेतना आ गई है और मेरे खाने के तरीकों में भी बहुत बदलाव हुआ है, जिसमें मैंने मोटे अनाज और बिना कैमिकल के उगाई हुई सब्ज़ियां शामिल करनी शुरु कर दी हैं, फिर चाहें इसके लिए मुझे कभी–कभी थोड़ा ज़्यादा पैसा ही क्यों न खर्च करना पड़े।'' साथ ही उन्होंने यह भी कहा, ''इस बाज़ार के कारण अब हम किसानों के काम के लिए उनकी और ज़्यादा इज़्ज़त करने लगे हैं।''

लेखक : चित्रांगदा चौधरी

स्रोत :https://www.thehindubusinessline.com/blink/know/direct selling adivasi style/article22116068.ece1

मैंने हरा रास्ता चुना है!

स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से आयोजित, पर्यावरण के प्रति संवेदनशील, शादी समारोह बंगलूरु में आम बात है। मीनाक्षी भरत (एक स्त्री रोग विशषज्ञ) के परिवार में जब एक शादी होने वाली थी, तो उन्होंने ऐसे तरीके ढूंढने शुरु किए जो कि पारिस्थितिकीय रूप से सतत हों। कुछ वर्षो पहले उन्होंने ऐसी ही एक शादी में भाग लिया था

और अब वे खुद इस प्रकार के विवाह समारोहों का आयोजन करने की सलाहकार बन चुकी हैं। वर्ष २०१४ में अपने बेटी की शादी के लिए भी उन्होंने ऐसा ही आयोजन किया जिसके लिए उन्होंने अपने लिए ''क्या करना है'' और ''कैसे करना है'' की मार्गदर्शिकाएं बनाईं। फिर कुछ महीने पहले, अपने बेटे की शादी पर उन्हें पता था कि हरित विवाह के लिए उन्हें क्या–क्या करना है।

आमंत्रण ईमेल पर भेजे गए। उसके बाद समय समय पर अतिथियों को सब व्यवस्थाओं के साथ–साथ हरित प्रयास के आधार पर क्या करना है, उसके निर्देश भी भेजे गए। शादी हरे भरे पेड़ों से सुसज्जित एक गार्डन में की गई जहां प्राकृतिक छाया के साथ साथ उनके कारण ठंडी हवा रही। खाने के व्यजंनों में प्राकृतिक और स्वास्थ्य को ध्यान में रखा गया जिन्हें स्टील और कांच के बर्तनों में परोसा गया। कोई कागज़ या पानी की बोतलें भी नहीं थीं। कपड़े के नैपकिन पर शादी के प्रतीक चिन्ह को आशा संस्था के स्वलीन बच्चों ने बनाया था, जहां भरत की बेटी काम करती है, और इन्हें फेंकने वाले टिशु पेपर की जगह पर इस्तेमाल किया गया।

खोरा कपड़े पर स्थानीय चितारा कला और पारंपरिक रंगोली से स्टेज की सजावट की गई। रंगे हुए नारियल से लटकती हुए सजावट की सामग्री बनाई गई और बाकी सज्जा में फूलों का इस्तेमाल किया गया जिनको लटकाने के लिए स्टाइरोफोम या ज़री का उपयोग नहीं किया गया था। वास्तव में, भरत ने कचरे से बनी कला इकट्ठी करने के लिए बहुत मेहनत की।

निर्देश लिखे बोर्ड मेहमानों को उपयोग की गई प्लेटें, कटोरियां, चम्मच आदि रखने की जगह बता रहे थे, जिन्हें बायो–एन्ज़ाइम्स में भिगो कर धोया जा रहा था। डब्बे में पैक किए हुए कोई भी तोहफे स्वीकार नहीं किए गए और मेहमानों को जाते समय एक कांच की बोतल में हल्दी और एक चमेली का पौधा तोहफे में दिया गया। भरत का कहना है कि उन्हें सबसे ज़्यादा मज़ा सावधानी से योजना बनाने और बारीकियों पर ध्यान देने में आया। ''मैंने शादी के बाद बचे हुए खाने और कचरे से घर में ही खाद बनाई। केवल एक बोरी भर ही सूखा कचरा हुआ था। मेरे लिए यह संतुष्टि ही सबसे ज़्यादा मायने रखती है।''

हरित आयोजन अब बंगलूरु के कम, लेकिन बढ़ते, पारिस्थितिकीय रूप से संवेदनशील और समझदार लोगों के बीच काफी प्रचलित हो रहे हैं। उनका कहना है कि इसके बारे में विचार करने से लेकर, इसकी योजना बनाना और फिर उसे लागू करने तक, यह अन्य आयोजनों से सस्ता भी पड़ता है। और भरत जैसे हरित समाज–सेवी दोबारा इस्तेमाल किए जाने वाली प्लेटों, टोकरियों और नैपकिन, और अपनी समझ बांटने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इन आयोजनों से होने वाली सुख की अनुभूति के कारण यह लोगों के बीच बहुत प्रचलित हो रहे हैं। बंगलूरु की कई संस्थाओं ने शादियों व अन्य आयोजनों के लिए प्लेटें, कटलरी और अन्य बर्तन उपलब्ध कराने शुरु किए हैं, जिनके लिए वे वापस करने योग्य राशि लेते हैं।

चित्र : लिटल बिग स्टेप्स, बंगलूरु में पारिस्थितिकीय रूप से सतत विवाह का आयोजन करने का स्थल, एक बगीचा है जहां पेड़ो की छाया के साथ–साथ ठंडी हवा भी थी, और नारियल की सजावट से बेहद सुंदर लग रहा था – मीनाक्षी भरत।

हरित प्रयासों के समर्थकों का कहना है कि कुछ लोगों को इस प्रकार के प्रयासों के बारे में संदेह रहता है। ''लोगों को यहां की स्वच्छता के बारे में विरोधाभासी धारणाएं हैं। लोग अभी पानी की बोतलें छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं,'' शेखर ने बताया। ''एक बार वे लोग लैंडफिल देख लेंगे तो उनकी धारणाएं मौलिक रूप से बदल जाएंगी,'' जवाब में भरत का कहना है।

क्या कड़े नियमों से ज़्यादातर लोगों के दृष्टिकोण में पूरी तरह से बदलाव आ पाएगा? शेखर को लगता है कि हां, ''इससे हमें अपने उद्देश्य प्राप्त करने में तेज़ी मिलेगी।'' लेकिन नारायण इसे सही रास्ता नहीं मानते। ''बदलाव के लिए कानूनी हस्तक्षेप महत्वपूर्ण नहीं है; इस आंदोलन को बनाए रखने के लिए राजनीतिक इरादा और प्रभावकारी प्रणालियों की ज़रूरत है।''

लेखक: विजयलक्ष्मी श्रीधर जो कि बंगलूरु की एक स्वतंत्र लेखिका हैं।

स्रोत : https://www.thehindubusinessline.com/blink/know/i do the green way/article23612505.ece

◆◆

२. दृष्टिकोण

प्रबुद्ध मंडल और आश्रम

अक्सर सालगिरह के समय लोग वाक्पटुता और पाखंड ज़्यादा करते हैं, बजाए इसके कि इस समय भविष्य की रणनीतियों के लिए पुराने अनुभवों के आधार पर चर्चाएं की जाएं। उनके बारे में दोबारा सोचना ज़रूरी है। जितना करिश्माई व्यक्ति होता है, उतना ही उनके नाम पर बड़ी बड़ी बातें करके असली मुद्दों को दबा दिया जाता है। गांधीवादी विचारों के साथ ज़्यादातर ऐसा ही होता है, जहां सरकार गांधीवादी बातें तो बहुत करती है, यहां तक कि खादी विभाग के कैलेंडर तक निकाल दिए जाते हैं। अप्रैल २०१८ में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अहमदाबाद के साबरमती आश्रम के शताब्दी समारोह में भाग लिया। अधिकारिक गांधीवादी वाक्पटुता और नागरिक स्तर पर छाई चुप्पी के बीच एक बड़ी खाई है, जिसके बारे में खुल कर बात करना ज़रूरी है खासकर अगर हम गांधी के दिखाए रास्ते पर चलना चाहते हैं, जैसा कि दक्षिण अफ्रीका में डैस्मंड टुटु द्वारा लिखित ट्रुथ एंड रीकन्सिलिएशन कमिशन में हुआ था।

आश्रम और गांधी

गांधी की प्रासंगकिता पर कोई सवाल नहीं है। सवाल यह है कि हम उस प्रासंगिकता को व्यक्त कैसे करते हैं। इस के लिए आश्रम का विचार, जीने का तरीका केन्द्रीय भूमिका रखता है। आश्रम केवल प्रार्थना की ही जगह नहीं थी; यह नैतिक आविष्कारों का एक चमकदार बीज था, बुनाई से लेकर कचरा उठाने की प्रथा से मुक्ति पाने के सपने को साकार करने का एक तरीका। गांधी के शारीरिक प्रयोगों का प्रभाव सीधा शरीर से जुड़ी राजनीति पर था – काम से लेकर, चलने, उपयोग करने से लेकर दयाभाव तक, जहां नैतिक और राजनीतिक मिलकर विरोध की अवधारणा को जन्म देते हैं और आविष्कार तथा लोकतंत्र मिलकर पालन–पोषण को। हाल ही में एक बैठक में भौतिकशास्त्री और पर्यावरण केन्द्रित तकनीशियन अशोक खोसला ने इसे आसान शब्दों में कहा। उन्होंने कहा कि गांधी कोई लुड की तरह तकनीक–विरोधी नहीं थे, बल्कि उन्होंने भविष्य की सोच के लिए एक ढांचा दिया था। वो तो सरकार, जो जलवायु परिवर्तन और कॉरपोरेट सामाजिक जिम्मेदारी का डंका पीट रही है, उसे समझना होगा, कि कैसे जीवनशैली और आजीविकाओं को जोड़ा जाए। गांधी ने कई आविष्कार किए जहां उन्होंने प्रार्थना, सैर करना, बुनाई, लेखन, भजन सभी की दोबारा व्याख्या की जिससे कि आसपास रहने वाले और ब्रह्मांड, स्वदेशी और स्वराज, सब में तालमेल बैठाया जा सके। इस सब में आश्रम की केन्द्रीय भूमिका थी, जो कि सोच और जीवन जीने का एक तरीका था। आश्रम के भविष्यात्मक अभिप्राय को अभी तक समझा नहीं गया है। आप खुद से पूछिए, कि आश्रम का सरपरस्ती के संदर्भ में क्या मतलब होता है?

आश्रम वो जगह नहीं है जहां गांधी का अचार बना कर बेचा जाए। वह नैतिक आविष्कार का केन्द्र था, जहां आध्यात्म रोज़मर्रा के जीवन में मिलकर लोकतांत्रिक रचनात्मकता को बढ़ावा देता था। क्या आप ऐसी कुछ संभावनाओं के बारे में सोच सकते हैं जहां नागरिक समाज हिंद स्वराज की परिकल्पना में जलवायु परिवर्तन का हल ढूंढ सकता है। एक गांधीवादी यह समझ जाएगा कि जिम्मेदारी के अनेकार्थ में यह मानना ज़रूरी है कि सततता तब तक एक प्रांतिक विचार बना रहेगा, जब तक कि उसे बहुलता, न्याय और शांति के साथ जोड़ कर न देखा जाए। इसके लिए, हमें भारत में निर्मित और राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे अजीब विचारों से बहुत ज़्यादा आगे का सोचना होगा।

नए ज़माने का प्रबुद्ध मंडल

नीतिगत स्तर पर, आश्रम के विचार को चुनौती देने वाला, हमारे संज्ञान में जगह लेने की कोशिश करने वाला ही प्रबुद्ध मंडल है। इस विचार के बारे में कुछ बेहद क्रूर है, डार्विनियन दुनिया में ज्ञान, जहां डंक और पंजे हिंसा को कमज़ोर करते हैं। एक प्रबुद्ध मंडल ज्ञान का रणनीति और विशेषज्ञता के क्षेत्र में तकनीकीकरण कर देता है। वहीं एक आश्रम नैतिकता और ब्रह्मांड के सवालों को खोलता है। प्रबुद्ध मंडल पर एक प्रकार का अभिमान है, एक दृढ़ विश्वास कि ज्ञान का मतलब है समस्याओं का निवारण कर पाना। एक आश्रम ज्ञान की सीमाओं और विनयशीलता को समझता है। प्रबुद्ध मंडल आपको शक्ति की मर्दानगी की ओर आमंत्रित करता है, जो शक्ति को रणनीति बताता है। विश्वविद्यालयों और ज्ञान की चर्चाओं की अधोगति के साथ–साथ, प्रबुद्ध मंडल ने मर्दानगी का स्वरूप ले लिया है, जिसने नैतिकता को किनारे धकेल दिया है। आश्रम ज्ञान की सीमाओं और जटिलताओं को समझते हुए नीतियों के प्रति प्रार्थना देता है। जब हम ऑब्ज़र्वर रिसर्च फाउन्डेशन, कार्नगी, विवेकानंद के प्रबुद्ध मंडलों को देखते हैं, तो हमें दिखता है कि सुरक्षा के जुनून के कारण सत्याग्रह को पीछे छोड़ दिया गया है। अहिंसा आम लोगों और अशिक्षितों के लिए है। देशभक्ति और निपुणता के पीछे बुरी नैतिकताएं छिपी हुई

हैं। और इनमें से हर एक किसी–न–किसी मिथ्या को बढ़ावा देती है – पहली तो राष्ट्रवाद की मिथ्या, दूसरी ज्ञान की मूल्य तटस्थता की मिथ्या। हम एक भी ऐसे प्रबुद्ध मंडल के बारे में नहीं जानते जिसे शांति के बारे में स्पष्ट रूप से पता हो। जानकारी और निपुणता में विशेषज्ञता हासिल करके, प्रबुद्ध मंडल ने ज्ञान की ज्ञानवादिता की नैतिकता खो दी है। यहां तक कि युद्ध को भी आज हितों का संतुलन बनाए रखने के रूप में देखा जाता है।

जब हम किसी प्रबुद्ध मंडल को देखते हैं और उसकी तुलना अपने समय के किसी महान सामाजिक आंदोलन से करते हैं, तब हमें शांति, लोकतंत्र की नई कल्पनाओं और नीतियों के पारंपरिक विचारों के बीच का फर्क़ दिखाई देता है। मुझे समाजशास्त्री रजनी कोठारी की याद आती है जो प्रबुद्ध मंडल के विचार पर ही हंसा करते थे। वे कहते थे कि हम लोकतांत्रिक सिद्धांतों का आतिथ्य करते हैं; और प्रबुद्ध मंडल ज्ञान को गुप्तता में लिप्त कर देता है। एक प्रबुद्ध मंडल ज्ञान का वास्तुतीकरण कर देता है। उन्होनें मुझ से कहा था कि यदि विकासशील समाजों के अध्ययन का केन्द्र एक प्रबुद्ध मंडल होता, तो उसने आपातकाल को चुनौती न दी होती। केवल चौकीदार, माली, वरिष्ठ अध्ययनकर्ताओं, और अतिथियों की मिली–जुली बुद्धिमत्ता से ही इस प्रकार की एकजुटता मिल सकती है। कोठारीजी के अनुसार, एक प्रबुद्ध मंडल सत्ता के नशे में इतना चूर रहता है कि वह असल में नैतिक रूप से स्वायत्त होने का प्रयास भी नहीं करता। दु:ख की बात यह है कि जैसे ही उनके जैसे राजनीतिशास्त्री गए, लोकतांत्रिक कल्पना की कमी प्रबुद्ध मंडलों के प्रति अंधभक्ति के रूप में और ज़्यादा मज़बूत होती गई। गांधीवादी आश्रम को ही प्रबुद्ध मंडलों की कथित प्रभावकारिता को चुनौती देनी होगी।

आश्रम को पुन: सशक्त करना

गांधीवादी आश्रम, बिना पक्षपाती राजनीति के, असंतोष की कल्पना का केन्द्र हो सकता है। यह इस बात पर ज़ोर दे सकता है कि देखभाल और चेतना के तरीके के रूप में असंतोष हमेशा बहुलता पक्षीय होता है। हाशिए के, अल्पसंख्यक, विस्थापित, हारे हुए, अनौपचारिक, वैकल्पिक परिकल्पना और अधीनस्थ लोग हर मायने में विभिन्न प्रकार के ज्ञान को दर्शाते हैं, जो संवैधानिक कानून या लोकतांत्रिक मंचों पर देखने को नहीं मिलते। आश्रम, ये जानते हुए कि भारत में हाशिया बहुत विशाल है, खामोशी और हाशिए का अभिभावक बन जाता है, अपने ही अधिकार में पीड़ा और अतिजीवन का एक महाद्वीप बन जाता है। इसमें यह निहित है कि बाध्य सदस्यता के विपरीत, सरपरस्ती करना सेवानिवृत्ति के समय के लिए आसान नहीं है। यह नियमित रूप से हमारे विवेक और सचेतना को जगाए रखता है। तीसरा, इसके अंतर्गत, विचार जीवनशैली और आजीविका से जुड़े रहते हैं जिससे कि हम विचारों के लिए जिएं, उनके बिना नहीं। चौथा, सरपरस्ती महान लोगों की याद को स्थगित नहीं करती, बल्कि उस याद को वास्तविकता बनाती है, जैसे कि भाषा, जो कि आविष्कार का नियमित स्रोत है। गांधी को फॉरमैल्डिहाइड में भिगा कर रख देने से काम नहीं चलेगा। गांधी तब तक जीवित रहेंगे जब तक हर नागरिक उनका पुन: आविष्कार करता रहेगा। यदि अभिभावक भी प्रबुद्ध मंडल बन जाते हैं, तब गांधीवादी विचार दूसरे दर्जे पर चले जाते हैं जिन्हें फिर केवल नुमाइश के लिए रखा जा सकता है। इस प्रकार सरपरस्ती याद, प्रार्थना, आविष्कार की नैतिकता है और यह किसी भी अधिकारिक कमिटि से आगे तक जाती है। इरोम शर्मिला, कश्मीर की औरतों से लेकर नर्मदा घाटी के संघर्ष तक, कृषि क्षेत्र के नए विवादों तक (जहां विशेषज्ञ कृषि को 'धुंधले उद्योग' के रूप में देखते हैं), हर नागरिक अभिभावक बन जाता है और आश्रम नैतिकता के नए प्रयोगों के लिए संचायती संपत्ति बन जाता है। वास्तव में, मेरे और मेरी पीढ़ी के अन्य कई लोगों के लिए, एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला, चेन्नई का प्रकाश – संश्लेषण अध्ययन केन्द्र (श्री. ए.एम.एम. मुरुगप्पा चेटियार रिसर्च सेन्टर), जो कि स्वर्गीय श्री. सी.वी. शेशाद्री के अंतर्गत वैकल्पिक ऊर्जा, एक गरीब आदमी के विज्ञान का सपना देखता था, जो विचारों के संदर्भ में गरीब नहीं था – यह सबसे महत्वपूर्ण आश्रम रहे हैं। प्रयोगशाला के आसपास बसी झुग्गियां मछलीपालन, वायु टनल, वायु संचालन, अपशिष्ट, शैवाल से जुड़े आविष्कारों को पैदा करने के लिए एक उपजाऊ जगह बन गई थीं। यह शायद एकमात्र वैज्ञानिक प्रयोगशाला थी जहां काम करने वाले, सफाई वाले और वैज्ञानिकों के नाम पर पेटेन्ट मिले थे, जहां केवल विज्ञान ही नहीं बल्कि हर प्रकार के काम की एक गरिमा थी। शेशाद्री ने एक ऐसे भारत का सपना देखा था जहां गाधीवादी सत्य वैज्ञानिक सत्य से आकर मिलता था, जहां ज्ञान और जीवनशैली के लिए सहयोगपूर्ण रणनीतियां बनाई जाती थीं।

शेशाद्री और कोठारी बुद्धिजीवी थे जिन्होंने सार्वजनिक संसाधनों को विचारों के लिए संचायती संसाधन समझा, न कि ऐसे संसाधन जिन्हें विशेषज्ञ अपने आधीन दबा कर रखें। शेशाद्री ने आत्मसंयमी विज्ञान की रचना की, जो नैतिकता में खराब नहीं थी, बल्कि संभावनाओं में खेलती थी। एक इच्छा कायम है कि आज के आश्रम भी इसी प्रकार के आत्मविश्वास का पुन: सृजन करें।

आश्रम को भविष्य के एक हिस्से के रूप में देखा जाए तो यह एक बड़ी गांधीवादी चुनौती है, जहां नागरिक समाज स्वदेशी और स्वराज के जुड़ाव के लिए संघर्षरत है, जिसमें वर्तमान सरकार – जो कि निचले दर्जे के राष्ट्रवाद का गुणगान करती है – ने बाधा डाल दी है। २१वीं सदी के लिए नैतिकता की पुनर्रचना करना आश्रम के लिए एक चुनौती

है, जहां आध्यात्म अपनी पवित्रता को न खोए, या नैतिकता विज्ञान के नए मायने ढूंढना बंद न करे। यह नए मानदंडों और उदाहरणों की एक खोज है और साबरमति आश्रम वास्तव में एक धरोहर है क्योंकि ये ऐतिहासिक होने के साथ–साथ भविष्यात्मक भी है। इसकी १००वीं वर्षगांठ पर इसका दोबारा समस्वरण करने का समय आ गया है, जिससे कि आज़ादी, विश्वास और आविष्कारिता की महान परंपराएं एक बार फिर से शुरु हो सकें।

लेखक : शिव विश्वनाथन, प्रोफेसर, जिंदल ग्लोबल लॉ स्कूल एवं निर्देशक, सेन्टर फॉर स्टडी ऑफ नौलेज सिस्टम, ओ.पी.जिन्दल ग्लोबल यूनिवर्सिटि।

स्रोत : http://www.thehindu.com/opinion/lead/the-think-tank-and-the-ashram/article19253231.ece

लेखा परीक्षक के रूप में आम लोग

सामाजिक लेखा परीक्षण नागरिक–केन्द्रित जवाबदारी सुनिश्चित करते हैं । संस्थानों के भंग होने से एक तथ्य स्पष्ट हुआ है कि लोकतंत्र – और खासकर सार्वजनिक पैसे – के लिए अनंत सार्वजनिक निगरानी ज़रूरी है। लेकिन भारत में, कुलीन वर्ग के लोगों ने असंतोष और चेतावनी की आवाज़ों को बेअसर करने के लिए बनाए गए पदों को खत्म कर दिया है, जिसके कारण सार्वजनिक निगरानी नहीं हो सकती। लोकतांत्रिक शासन में ज़रूरी है कि नागरिकों के पास सवाल पूछने, शिकायत दर्ज करने, और सुधारात्मक प्रक्रिया का हिस्सा बनने की कानूनी शक्ति हो। सामाजिक लेखा परीक्षण, जिनका अब भारत में विकास होने लगा है, संभवत: एक शक्तिशाली लोकतांत्रिक तरीका बन सकते हैं जिनके माध्यम से पारदर्शिता को लोगों के प्रति संस्थागत जवाबदारी का हिस्सा बनाया जा सकता है।

१९९० के दशक के मध्य में, मज़दूर किसान शक्ति संगठन ने विकास–खर्च पर गांव आधारित जन सुनवाइयों के साथ प्रयोग किया और उसकी संकल्पना करनी शुरु की। इससे सूचना का अधिकार स्थापित करने की बुनियाद मिली जिसने एक ताकतवर, उपयोग करने लायक लोगों के मुद्दे और साथ ही सामाजिक लेखा परीक्षण का संस्थागत रूप लिया।

सूचना सशक्त करती है

केन्द्रीय राजस्थान के ५ अलग–अलग विकास खंडों में चलाए गए जन सुनवाई अभियान में, लोगों ने काम कर–कर के सीखा। उन्हें अहसास हुआ कि उनके सशक्तिकरण के लिए सूचना केन्द्रीय है। रिकार्डो के सत्यापन, जांच और लेखा परीक्षण के रहस्य को भंग किया गया। अनौपचारिक रूप से प्राप्त किए गए विकास रिकार्डो को जब सार्वजनिक स्तर पर पढ़ा गया, तो इसके आकस्मिक प्रभाव दिखाई दिए। जब सरकारी श्रम सूचि से नाम पढ़े गए तो तुरंत प्रतिक्रियाएं हुईं और लोगों का जस्ता बढ़ गया। मृत लोगों और गैर–श्रमिकों को दिए गए भुगतानों के बारे में सुनकर लोगों ने जन सुनवाइयों में गवाहियां देनी शुरु कर दीं। इनमें शामिल थे सरकारी नौकरियों पर काम करने वाले लोग और सेना में भर्ती लोग, जिनके नाम ऐसे ही चुनाव सूचि से उतार कर उसी क्रमांक में लिख दिए गए थे। यहां तक कि जानवरों के नाम भी श्रमिकों की सूचि में शामिल कर दिए गए थे। बिना दरवाज़ों, खिड़कियों या छत वाले भवनों को रिकार्ड में लेखा परीक्षित और 'पूरा' दिखा दिया गया था। जाली विकास कार्यो को कागज़ पर पूरा कर लिया दिखाया गया था, जिसके लिए भुगतान भी किया गया था। इससे स्थानीय नागरिकों के बीच रोष फैल गया। जाली नाम और जाली कामों का पर्दाफ़ाश हो गया।

लोगों ने ध्यान से बनाई गई चार मांगें रखीं और उन्हें एक पर्चे पर लिख कर सब के बीच बांटा : विकास खर्च के पूरे और खुले रिकार्ड; लोगों के जवाब देने के लिए जिम्मेदार अधिकारियों की मौजूदगी और जवाबदारी; शिकायतों का तुरंत समाधान, जिसमें गबन किए हुए पैसों की वापसी शामिल है; और अनिवार्य 'सामाजिक लेखा परीक्षण'।

अमिताभ मुखोपाध्याय, जो उस समय आई.ए. और ए.एस. के अधिकारी थे, जिन्होंने इस पूरी प्रक्रिया को देखा और उसमें अपना योगदान भी दिया, ने टिप्पणी की थी कि यह ''लेखा परीक्षण की अपनी जड़ों पर वापसी'' की प्रक्रिया थी : लेखा परीक्षण का अंग्रेज़ी शब्द ऑडिट एक लैटिन शब्द ऑडियेअर से आया है, जिसका मतलब है ''सुनना''। जन सुनवाइयों ने जानकारियों के पढ़े जाने और लोगों की प्रतिक्रियाएं रिकार्ड किए जाने की प्रक्रिया में मदद की। इस मंच के प्रभावकारी संस्थानीकरण से संभवत: लोगों और समुदायों को वास्तविक निगरानी शक्ति दिए जाने के प्रयास में मौलिक सफलता मिल सकती थी। सूचना का अधिकार आंदोलन का एक महत्वपूर्ण नारा जो इन जन सुनवाइयों और लोगों के आंदोलनों से उभर कर आया वह था – ''हमारा पैसा, हमारा हिसाब'' – जो कि सामाजिक लेखा परीक्षण की अवधारणा को कम शब्दों में प्रभावकारी रूप से परिभाषित करता है।

सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत सामाजिक लेखा परीक्षण की पहली आवश्यकता को लागू किया – नागरिकों को सरकारी रिकार्डो तक पहुंच देना। पिछले १३ वर्षो में इस अधिनियम के उपयोग से इसके हितकारी प्रभाव दिखाई दिए हैं, लेकिन साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ है कि केवल जानकारी प्राप्त करना ही काफी नहीं है। सूचना के अधिकार पर चल रही वर्तमान चर्चाएं उस निराशा को दर्शाती हैं कि जब आम नागरिकों के पास जानकारी तो है, पर फिर

भी उन्हें कोई समाधान नहीं मिलता। सामाजिक लेखा परीक्षण में जवाबदारी केन्द्रीय है, और जांच तथा सत्यापन की शक्ति लोगों के हाथ में दी गई है : नागरिक – केन्द्रित जवाबदारी।

सामाजिक लेखा परीक्षण की शक्ति

अवधारणा के स्तर पर सामाजिक लेखा परीक्षण आसान है। लोगों के साथ सक्रियता से जानकारी बांटनी है जिससे कि वे किसी भी सेवा या कार्यक्रम के ''प्रभावों का परीक्षण'' कर सकें, उसके नियोजन से लेकर उसके कार्यान्वयन और मूल्यांकन तक। लेकिन, यह कहना जितना आसान है, उतना करना आसान नहीं है। एक स्वतंत्र सुगमता ढांचा खड़ा करना होगा, उसके कार्य और जिम्मेदारियां निर्धारित करनी होंगी, कानूनी रूप से सशक्त करना होगा और यह सुनिश्चित करने की शक्ति देनी होगी कि सामाजिक लेखा परीक्षण हो रहे हैं। शक्तिधारकों ओर शक्तिहीनों के बीच के रिश्ते को प्रतिरक्षा से बदल कर अधिकारपूर्ण, अबराबरी से बराबरी में बदलना होगा, जहां उनका सवाल पूछने का अधिकार अटल रहना चाहिए। जानकारी बांटने, टिप्पणियों को रिकार्ड करने और प्राप्त परिणामों पर कार्यवाही करने के विशिष्ट तरीके बना लिए गए हैं। अब बस उन्हें लागू करना बाकी है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) पहला ऐसा कानून बना जिसमें सामाजिक लेखा परीक्षण को वैधानिक रूप से अनिवार्य किया गया। लेकिन, मनरेगा के अंतर्गत भी, सामाजिक लेखा परीक्षण की प्रगति बहुत धीमी रही है। उन्हें राजस्थान में सबसे ज़्यादा विरोध का सामना करना पड़ा, जहां पर इस अवधारणा का जन्म हुआ था। चयनित प्रतिनिधियों और अधिकारियों ने इस प्रक्रिया को रोकने और निष्प्रभावित करने के लिए राजनीतिक नेतृत्व को धमकाया, उन पर हिंसा की और दबाव बनाया। इसमें एक ही अपवाद रहा, वह था विभाजन पूर्व आंध्र प्रदेश जहां सामाजिक लेखा परीक्षणों को संस्थागत रूप दिया गया और वहां पर इसके महत्वपूर्ण सकारात्मक परिणाम भी प्राप्त हुए। सिक्किम, तमिल नाडु और झारखंड में कई रचनात्मक प्रयास भी किए गए। राष्ट्रीय स्तर पर संस्थागत रूप में सामाजिक लेखा परीक्षणों के क्षेत्र में हाल में ही प्रगति होनी शुरु हुई है, जिसमें नियंत्रक और लेखा परीक्षक सामान्य और सर्वोच्च न्यायालय की रुचि और सहयोग रहा। २०१७ में सामाजिक लेखा परीक्षण के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सफलता मिली जब मेघालय सभी विभागों में लागू करने के लिए सामाजिक लेखा परीक्षण कानून पास करने वाला पहला राज्य बना। नियंत्रक और लेखा परीक्षक सामान्य के कार्यालय ने २०११ में मनरेगा के लिए सामाजिक लेखा परीक्षण नियम बनाए, वर्ष २०१५ में प्रभाव लेखा परीक्षण किया, और अंततः एक साल बाद ग्रामीण विकास मंत्रालय के साथ मिलकर सामाजिक लेखा परीक्षण मानक तैयार किए – विश्व में पहली बार ऐसा हुआ। यदि इनका पालन किया जाए, तो यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि सामाजिक लेखा परीक्षण प्रक्रिया व्यवहार्य, विश्वसनीय और सामाजिक जवाबदारी के सिद्धांतों पर खरी उतरेगी।

सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में कई आदेश जारी किए हैं जो सामाजिक लेखा परीक्षणों को एक मजबूत बुनियादी ढांचा देते हैं। मनरेगा और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत इनकी संवैधानिक आवश्यकता का हवाला देते हुए, न्यायालय ने आदेश दिया है कि नियंत्रक और लेखा परीक्षक सामान्य ने जो सामाजिक लेखा परीक्षण मानक तैयार किए हैं उन्हें राज्य से सहयोग प्राप्त, राज्य–स्तरीय सामाजिक लेखा परीक्षण इकाइयां स्थापित करने के लिए उपयोग किया जाए। वर्तमान व्यवस्था के घोषणापत्र में सामाजिक लेखा परीक्षण को केवल सतही रूप से शामिल किया गया है। लेकिन कानूनी जवाबदारी ढांचों, जैसे कि लोकपाल विधेयक और सचेतक सुरक्षा विधेयक पर कोई काम नहीं किया गया है। सामाजिक लेखा परीक्षण प्रणाली को सहक्रियात्मक समर्थन और विभिन्न प्राधिकरणों द्वारा सहयोग चाहिए जिससे कि एक ऐसा संस्थागत बुनियादी ढांचा स्थापित किया जा सके जिसे कोई भी निहित हित कमज़ोर न कर सके। यह नागरिक समूहों के लिए उचित अवसर है कि वे सामाजिक लेखा परीक्षणों को सशक्त करने के लिए अभियान चलाएं, और राजनीतिक कार्यकारिणी तथा कार्यान्वयन एजेंसियों से जवाबदारी मांगने के क्षेत्र में वास्तविक प्रगति की मांग करें।

लेखक : निखिल दे, अरुणा रॉय

स्रोत : http://www.thehindu.com/opinion/op ed/people as auditors/article23721429.eces.

◆◆

३. विकल्पों की कल्पना

शिक्षा की पुन: परिकल्पना का सफ़र – मनीश जैन के साथ बातचीत

हार्वर्ड वॉल स्ट्रीट से युनेस्को से एक सामाजिक आविष्कारक तक का आपका सफर अब तक कैसा रहा?

स्कूल के छात्र के रूप में, मुझे याद है कि मुझे कभी ऑनर्स कक्षाओं और कभी सुधारात्मक कक्षाओं में भेजा जाता था क्योंकि मैं विद्रोही सवाल करता था और कक्षाएं/टीचर अक्सर उबाऊ होते थे। मैंने देखा कि 'बुद्धु' बच्चे असल में बुद्धु नहीं थे और उनमें कई ऐसे गुण थे जिन्हें स्कूल की प्रणाली देख या उस पर काम नहीं कर पाती थी। मैंने देखा कि जिन्हें 'बुद्धु' या 'धीमे शिक्षार्थी' कहा जाता था, वे या तो गरीब परिवारों से थे या अल्पसंख्यक समुदायों के। एक बार आप बच्चों पर एक श्रेणी का ठप्पा लगा देते हैं, तो उससे बाहर निकलना बहुत मुश्किल हो जाता है। सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से मुझे यह अन्यायपूर्ण लगा। धीरे–धीरे मैंने जाना कि आईक्यू टेस्ट करके लाखों मासूम बच्चों को 'असफल' घोषित कर देना मानवता के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध है।

मेरे माता–पिता हमेशा मुझपर ''पाठ्यक्रम अतिरिक्त'' गतिविधियों पर ध्यान देने के बजाए, पढ़ाई में ध्यान देने का दबाव बनाए रखते थे। मैं हमेशा इसका विरोध करता था क्योंकि मुझे लगता था कि मैं इन ''अतिरिक्त'' गतिविधियों के माध्यम से ज़्यादा सीख रहा था (जैसे कि अपना खुद का व्यवसाय शुरु करना, सामुदायिक सेवा, अखबार में काम करना, खेलना आदि) जिससे मैं अपने आसपास की दुनिया से संपर्क करने के तरीके सीख रहा था। यह बेहद बेतुकी बात है कि स्कूलों में केवल कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषयों की सीख को मान्यता दी जाती है और रोज़मर्रा के जीवन में सीखे जाने वाले सबकों को नकारा जाता है। मुझे यह भी समझ आने लगा कि शिक्षा प्रणाली डर पर आधारित है, जो पुरस्कारों और सज़ाओं के आधार पर चलती है। इस प्रणाली में अपनी खुद की खोज के लिए कोई समय या जगह नहीं दी जाती। बच्चा होने के नाते, मुझे लगा कि एक दिन मैं इस शिक्षा प्रणाली को चुनौती दूंगा।

वॉल स्ट्रीट में काम करने के बाद, मुझे दिखने लगा कि लोगों और पृथ्वी के विरुद्ध भयंकर अपराध करने वाले वही होशियार कहे जाने वाले ''आई वी लीग शिक्षित'' लोग हैं, 'अशिक्षित' लोग नहीं। मैं सोचने लगा कि 'शिक्षित' लोग ऐसा बर्ताव क्यों करते हैं। मुझे समझ आने लगा कि आधुनिक शिक्षा हमें हमारे अंतर्मन, हमारे हाथों, हमारे दिलों और प्रकृति से तोड़ने में क्या भूमिका निभाती है। यह हमें भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था का गुलाम बना देती है। मुझे लगा कि जीवन में मेरा लक्ष्य केवल अमीर लोगों को और अमीर बनाना नहीं होना चाहिए।

अफ्रीका और भारत के कई गांवों में जाने और काम करने के बाद, मैंने पाया कि 'पश्चिम सबसे अच्छा है' सिखाने के लिए शिक्षण प्रणाली प्रमुख तरीका बन गया है। आज के 'शिक्षित' विद्यार्थी अपनी परंपराओं, समुदायों, स्थानीय भाषाओं, अपने हाथ से काम करने और अपने से बड़ों के बारे में शर्मिंदा होते हैं। इसने हमारी समुदाय की समझ को बदल दिया है, और कई लोगों को अकेलेपन, निम्न दर्जे और उदासी का सामना करने के लिए छोड़ दिया है। मेरे खुद के पिताजी भी इसका शिकार बने। और मैं भी। आज मुझे एकदम स्पष्ट हो चुका है कि 'आदिवासियों को शिक्षित' करने के पीछे उन्हें उनकी ज़मीनों (जो प्राकृतिक संसाधनों से भरी हुई हैं) से विस्थापित करने का एजेन्डा छिपा हुआ है। और इसके पीछे ग्रामीण समुदायों को शहर–जैसे उपभोक्ता बनाए जाने का भी एजेन्डा है।

इसके साथ ही, मुझे यह भी समझ आने लगा था कि विशाल कॉरपोरेशनों, सरकार, सेना और विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र और विशाल गैर–सरकारी संस्थाओं तथा फैक्टरी की तरह चलने वाले स्कूलों के बीच किस प्रकार की गुटबंदी और नियंत्रण है। किस प्रकार कुलीन वर्ग को स्थापित और चलाए रखने के लिए फैक्टरी–नुमा स्कूल प्रणाली बनाई गई है, कैसे शिक्षा का सामाजिक शोषण तथा पारिस्थितिकीय विनाश से गहरा जुड़ाव है और किस तरह से यह पूरा खेल अन्यायपूर्ण और एकतरफा है। मैं देख पा रहा था कि हम टाइटैनिक पर सवार हैं। वास्तव में जो ज़रूरत थी, वह थी विकास पर पुन: विचार करने की एक व्यापक प्रक्रिया की और इस खेल के बुनियादी नियमों को बदले जाने की। गांधीजी की किताब हिंद स्वराज ने मेरे अनुभवों को समझने और आगे का रास्ता दिखाने में मेरी बहुत मदद की।

कई अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसियों, सरकारों, स्कूलों ओर गैर–सरकारी संस्थाओं के साथ काम करने के बाद, मैंने स्कूलों में सुधार करने की कोशिश छोड़ दी। मुझे लगा कि मैं जो सबसे उपयोगी काम कर सकता हूं, वह है इस नकली शिक्षा प्रणाली के झूठ का पर्दाफ़ाश करना। दूसरे शब्दों में, विद्यार्थियों को इस फैक्टरी–नुमा स्कूल प्रणाली से छुटकारा दिलाने में मदद करना। गांव में मेरी दादी ने मुझे यह देखने में मदद की कि कितने अशिक्षित और अनपढ़ लोगों के पास कितना महत्वपूर्ण ज्ञान और विवेक है, जिसकी हमें इस ग्रह पर आने वाली चुनौतियों का हल निकालने के लिए ज़रूरत पड़ती है। हमें ऐसे लोगों को शिक्षा के कचराघरों से बाहर निकालना होगा। इस प्रकार मैं और मेरी पत्नि 'शिक्षांतर आंदोलन' के इस सपने को साकार करने के काम में लग गए।

आप अलग अलग कार्यक्षेत्रों में विभिन्न भूमिकाओं में रहे हैं। आप को कब अहसास हुआ कि वैकल्पिक शिक्षा ही आपका सपना है?

संयुक्त राष्ट्र, हार्वर्ड और वॉल स्ट्रीट के मेरे अनुभवों के बाद मुझे समझ आया कि फैक्ट्री–नुमा शिक्षा को इसलिए बढ़ावा दिया जाता है जिससे कि भूमंडलीकृत बाज़ार स्थापित किए जा सकें और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं और संस्कृति को खत्म करा जा सके।

सीखी हुई चीज़ों को दिमाग से निकालने की प्रक्रिया में मेरे लिए महत्वपूर्ण समय तब आया जब मैंने जांचना शुरु किया कि क्या वाकई में विशेषज्ञ कहलाने वाले लोगों के पास विश्व की समस्याओं के हल हैं। दूसरा महत्वपूर्ण समय था जब मेरे सामने सवाल आया कि क्या गरीब अशिक्षित ग्रामीण और आदिवासी असल में इतने गरीब, शक्तिहीन या बेवकूफ़ हैं जैसा कि हमें सिखाया जाता है। तीसरा महत्वपूर्ण सवाल जिसे मुझे पार करना था वह यह विश्वास था कि इस प्रणाली को ज़्यादा पैसे या तकनीक के माध्यम से सुधारा या ठीक किया जा सकता है।

मेरा सोचना है कि हमें अपनी चेतना और सोच को इस भूमंडलीय अव्यवस्था से निकलने की ओर मोड़ना होगा। मैं पहले सोचा करता था कि आधुनिक शिक्षा समाधान का हिस्सा है, लेकिन फिर मुझे अहसास हुआ कि असल में यह समस्या का एक बड़ा अंश है। तो मैंने और मेरी पत्नि ने निर्णय लिया कि हम एक संसाधन केन्द्र स्थापित करेंगे जो हमें रचनात्मक लोगों का एक गांव तैयार करने में मदद करेगा जिसमें हम अपने बच्चों को पालेंगे। एकलव्य और नचिकेता की दो पुरानी प्रसिद्ध कहानियां, जो स्वयं अपने लिए सीख की रूपरेखा निर्धारित करने और स्कूल में सीखे हुए सबकों को भुलाने की मिसाल हैं, हमारे लिए यह दोनों ही कहानियां प्रेरक बनीं जैसे कि मेरी गांव की दादी थीं।

हम एक ऐसी जगह बनाना चाहते थे जहां जो लोग फैक्ट्री–नुमा स्कूली शिक्षा की आलोचनाओं से अवगत हैं, वे साथ आकर शिक्षात्मक एकाधिकार को गिराने के लिए रचनात्मक तरीकों पर काम करें और विविधतापूर्ण सीखने की जगह, प्रक्रियाएं और ज्ञान प्रणालियां तैयार करने में एकजुट हों। हम इस विचार का प्रसार करना चाहते थे कि लोगों के लिए अपने आप सीखना संभव है जहां उन्हें दमनकारी संस्थानों के दबाव और ढांचे की कोई ज़रूरत नहीं है। एक ऐसी जगह जहां हम पारंपरिक ज्ञान और उपहार की संस्कृति के माध्यम से अपने जीवन में बदलाव ला सकें। एक ऐसी जगह जहां हर पीढ़ी के लोग आएं और हमारे बच्चों को सीखने में सहयोग करें (क्योंकि हमने तय किया था कि हमारे बच्चे स्कूल नहीं जाएंगे) और हमें भी सीखे हुए सबक भुला कर नई चीज़ें सीखने में मदद करें। विशेषकर मैं ऐसा काम करना चाहता था जहां उबाऊ दिनचर्या न हो, जहां प्रतिदिन कुछ नया प्रेरणादायक सीखने को मिले।

आपको भारत में शिक्षा का क्या भविष्य नज़र आता है?

इसमें तीन महत्वपूर्ण धुरियों को देखना ज़रूरी है। मैं एक ऐसा भविष्य देखता हूं जहां आधुनिक शिक्षा युवाओं के बीच और ज़्यादा बेराज़गारी पैदा करेगी। अच्छी नौकरी देने का वादा जल्दी से टूट रहा है। इसके अलावा, जिन लोगों को नौकरी मिल भी जाती है, वे भी काफ़ी असंतुष्ट हैं – बहुत से लोग असल में अपनी नौकरियों से घृणा करते हैं या फिर जो काम करते हैं, उसे वे निरर्थक समझते हैं। इस तरह से डिग्रियों का मूल्य तो कम हो रहा है। उम्मीद है कि इसके परिणामस्वरूप, और ज़्यादा युवा स्कूलों और कॉलेजों को छोड़कर खुद की खोज करेंगे, अपने कौशल को पहचान कर उसका विकास करेंगे, और अपने खुद के काम शुरु करेंगे।

दूसरी महत्वपूर्ण धुरी है नई डिजिटल तकनीकें जिन तक युवाओं की पहुंच दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह एक दोधुरी तलवार की तरह है। मैं मानता हूं कि ऑनलाइन स्तर पर कई बेहद रोचक सीखने के अवसर भी हैं, जैसे कि MOOCs, टेड टॉक्स, खुद करके सीखें के वीडियो आदि। तीसरा पहलू है कई प्रकार के ईको – करियर की बढ़ोतरी जो औपचारिक स्कूली शिक्षा या डिग्रियों पर निर्भर नहीं हैं। मैं इन्हें अलाइवलीहुड बुलाता हूं। हमने पिछले १०० वर्ष औद्योगिकरण पर बिताए हैं जिन्होंने पारिस्थितिकीय तंत्रों का विनाश किया है; मेरा सोचना है कि अगल १०० वर्षों में हमें ऐसे उद्योग बनाने होंगे जो हमारे ग्रह का पुनर्जनन करेंगे। शिक्षा के क्षेत्र में हमें सीख को भुलाने पर सबसे पहले ध्यान देना होगा, जिसका मतलब है अपने दिमागों को उपनिवेशी सोच से स्वतंत्र करना और सिखाए हुए सबकों को भुलाना। मेरा मानना है कि इसके बाद ही हम हर चीज़ के बारे में फिर से सोचने के लिए जगह बना पाएंगे और अपने डर तथा अभाव – भाव से चलने वाली सोच के आगे बढ़ पाएंगे।

मैं देख सकता हूं कि आने वाले समय में अपनी सीख खुद तय करने वाली शिक्षा के प्रारूप, जैसे कि स्वराज विश्वविद्यालय, खड़े होंगे। आपदा के साथ, कई नए अवसर भी जन्म लेते हैं। हमने हाल ही में इंडियन मल्टीवर्सिटीज़ अलायंस की शुरुआत की है जिसमें देशभर के १० लोक विश्वविद्यालय भाग ले रहे हैं। जल्द ही और भी जुड़ेंगे।

नोट : यह शीना सचदेवा द्वारा मनीष जैन से की गई बातचीत का अंश है।

स्रोत : https://medium.com/swapathgami-walkout-walkon-network/a-journey-of-re-imagineingeducation-interview-with-manish-jain-efc8d4477b46

◆◆

४. उम्मीद के प्रतीक

उरलुंगल – भारत का सबसे पुराना मज़दूर सहकारी संघ

चित्र : यू.एल.सी.सी.एस.

भारत के केरल राज्य में, एक उल्लेखनीय श्रमिक सहकारी समिति ने ९० साल पुरानी मुख्यधारा अर्थशास्त्रियों की भविष्यवाणी को झुठला दिया। उरलुंगल श्रमिक अनुबंध सहकारी समिति, जो कि २००० सदस्यों की श्रमिकों के स्वामित्व वाली निर्माण सहकारी समिति है, विशाल बुनियादी निर्माण परियोजनाएं बनाती है जैसे कि सड़कें, पुल, और बड़े भवन समूह। उत्तर केरल के मालाबार क्षेत्र में बसे उरलुंगल टोले के नाम पर बनी उरलुंगल सहकारी समिति ने स्थानीय स्तर पर वैकल्पिक उत्पादन करने की अगुआई की है, जिसमें उन्होंने एकजुट आर्थिक व्यवस्था के गुणों, जैसे कि लोकतंत्र, तुल्यता, एकजुटता, पारस्परिक आदान–प्रदान, और एकीकृत नेटवर्क को साकार किया है। इन सिद्धांतों को उन्होंने अपने सदस्यों के आचार द्वारा अपनी सहकारी समिति के ढांचे में बुना है, और समिति के उपनियमों के माध्यम से समिति के प्रमुख उद्देश्यों को परिभाषित किया है – वह है, कि सहकारी समिति के श्रमिक – सुरक्षित, प्रतिफल देने वाले और अच्छी आमदनी देने वाला काम सुनिश्चित करेंगे। इसके लिए उन्होंने लोकतांत्रिक तरीके से काम की जगह का गठन किया और संसाधनों का समतावादी पुनर्वितरण किया, वो भी बड़े पैमाने पर प्रतियोगी इस कार्यक्षेत्र में, जिस में बड़े, मुनाफा बनाने वाले (और अक्सर भ्रष्ट) ठेकेदारों का प्रभुत्व रहता है।

समिति की लोकतांत्रिक और समतावादी मूल्यों के प्रति वचनबद्धता २०वीं शताब्दी की शुरुआत में उनकी स्थापना के दिनों में ही स्थापित कर दी गई थी। १९३०–४० के दशकों में, उरलुंगल राजनीतिक परेशानियों के भंवर से घिरा रहा, जब मालाबार में शक्तिशाली किसानों और श्रमिकों के आंदोलन खड़े हुए, राष्ट्रवादी आंदोलन में एक कट्टरपंथी मोड़ आया, और वामपंथी पार्टी क्षेत्र में प्रमुख दल के रूप में उभरी। सहकारी समिति की स्थापना के शुरुआती वर्षों में, मालाबार में इस उग्र सुधारवाद के कारण वैकल्पिक अर्थव्यवस्था का चरित्र रूप लेने लगा जो लोकतांत्रिक निर्णय प्रणाली, सामाजिक उद्देश्यों के अधीनस्थ बचत, पारिस्थितिकीय सततता, और सामूहिक उत्पादन पर आधारित थी। पिछले वर्षों में सहकारी समिति ने अपने लोकतांत्रिक संगठन, सामूहिक निर्णय प्रणाली, और मुनाफे से पहले लोगों के अपने वैकल्पिक चरित्र के उपयोग से हर चुनौती का सामना रचनात्मक तरीके से किया है।

मुख्यधारा अर्थशास्त्री अक्सर भविष्यवाणी करते हैं कि चाहें श्रमिक सहकारी समितियां बन भी जाएं, और वे समृद्ध भी हो जाएं, फिर भी वे जल्द ही एक पूंजिवादी उद्योग बन जाएंगे, और श्रमिकों द्वारा संचालित तथा श्रमिकों के स्वामित्व के बड़े बड़े मूल्य खो देंगे। इन तर्कों के विरुद्ध, उरलुंगल जैसी श्रमिक सहकारी समितियों का वास्तविक प्रदर्शन प्रेरणादायक है और उनका अनुभव भविष्य के लिए महत्वपूर्ण सीख प्रदान करता है। उरलुंगल की सफलता का केन्द्रीय कारण है उनकी समिति के अंतर्गत भागीदार प्रक्रियाओं और प्रत्यक्ष लोकतंत्र के प्रति वचनबद्धता।

निर्णय प्रणाली और श्रमिक लोकतंत्र

सहकारी समितियां अनुशासन और प्रोत्साहन जैसे पूंजिवादी लक्षणों के बिना कड़ा समन्वयन और प्रभावी उत्पादन सुनिश्चित कैसे करती हैं? वे कैसे सुनिश्चित करती हैं कि श्रमिकों के स्वामित्व के चलते सुपरवाइज़र की शक्तियां कम न पड़ें या श्रमिक अपनी जिम्मेदारियों से मुंह न मोड़ें? विशिष्ट रूप से, उरलुंगल समिति को वर्गीकरण और भागीदारी के बीच न्यायसंगत मिश्रण प्राप्त करने में सफलता कैसे मिली? इन सवालों के जवाबों के लिए, हमें उरलुंगल समिति के प्रभावी और भागीदार श्रमिक प्रक्रियाओं को विकसित करने के अनुभवों को देखना होगा।

उरलुंगल समिति में, हर वार्षिक आम बैठक में श्रमिक मिलकर निर्देशकों के बोर्ड का चयन करते हैं, और सहकारी समिति के पिछले वर्ष की रिपोर्ट पर विस्तार से चर्चा करते हैं। यह आम बैठक केवल औपचारिकता नहीं होती, और निर्देशकों के बोर्ड का पुनर्चुनाव पहले से निर्धारित नहीं होता। एक बार निर्देशकों के बोर्ड के चुनाव के बाद, उन्हें अनुबंध करने, तकनीकों के चयन, श्रमिकों को विभिन्न कार्यस्थलों पर भेजने, व अन्य रोज़मर्रा के निर्णय लेने के लिए स्वतंत्रता दी जाती है। इस प्रकार, निर्देशक सहकारी समिति के प्रबंधकों के रूप में काम करते हैं, जिसका मतलब है कि प्रबंधन का चुनाव श्रमिकों द्वारा किया जाता है – जो कि पूंजिवादी कॉरपोरेशनों की प्रक्रिया से बिल्कुल उल्टा है, जहां प्रबंधकों को अचयनित नेतृत्व द्वारा नियुक्त किया जाता है।

निर्माण स्थलों पर साइट लीडर काम संभालते हैं जिन्हें श्रमिकों के बीच से ऐसी प्रक्रिया द्वारा चुना जाता है, जिसमें सिर्फ प्रबंधकीय क्षमता

रखने वाले श्रमिक जिन पर बड़े पैमाने पर विश्वास और सम्मान है, वे ही चुने जा सकते हैं। श्रमिक और साइट लीडर नियमित रूप से श्रम के बंटवारे और कार्यस्थल पर उपयोग होने वाली प्रक्रियाओं के बारे में चर्चाएं करते हैं – उदाहरण के लिए, सामूहिक भोजन (जो सहकारी समिति पकाती है) के समय। हांलाकि बड़े पैमाने पर समावेशी विचार–विमर्श होता है, लेकिन एक बार निर्णय हो जाने पर, हर किसी को उसका पालन करना अनिवार्य है। साइट लीडर के निर्देशों का पालन न करने, अपनी जिम्मेदारी पूरी न करने, आर्थिक घोटाला करने या काम में जानबूझ कर लापरवाही करने पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है – हांलाकि इसकी ज़रूरत कम ही पड़ती है।

सहकारी समिति में नियमित बातचीत के माध्यम से लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं बनाई रखी जाती हैं। साइट लीडर निर्देशकों के बोर्ड के साथ रोज़ बैठक करते हैं। सभी साइट लीडर, बोर्ड सदस्य, और तकनीकी स्टाफ साप्ताहिक बैठकों में भाग लेते हैं, और सभी श्रमिक मासिक बैठकों में भाग लेते हैं जहां पर कोई भी नई घटना की रिपोर्ट दी जाती है, और जहां सदस्य अपनी आपत्तियां व्यक्त कर सकते हैं। पूरे वित्तीय विवरण पर वार्षिक आम बैठकों में चर्चा की जाती है। जहां इतनी बैठकें करने के लिए पूरा समय और ऊर्जा लगानी पड़ती है, इसके कारण सामूहिक स्वामित्व की भावना, एकजुटता और सांझे उद्देश्यों की भावना भी बनी रहती है, जो उत्पादकता बढ़ाने में मदद करती है।

भागीदारी और बाज़ार में प्रतियोगितात्मकता

उरलुंगल समिति की निजि ठेकेदारों से मुकाबला करने के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह है कि सहकारी समिति में श्रमिकों के लाभ काट कर या निर्माण सामग्री में कम गुणवत्ता या निर्धारित सामग्री से कम उपयोग करके कीमतों को कम नहीं किया जा सकता। सहकारी समिति ने हमेशा अनुबंध में दिए गए विनिर्देशों के पालन करने को अटल मूल्य माना है, जिसके कारण आज उसकी प्रभावशाली प्रतिष्ठा है। चूंकि भारत के सार्वजनिक कार्यों की परियोजनाएं भ्रष्टाचार और चालबाज़ी के लिए मशहूर हैं, यह सीमाएं गंभीर बाधा पैदा करती हैं।

सहकारी समिति की प्रतियोगितात्मकता उसके श्रमिकों की उच्च उत्पादन क्षमता से आती है, जिसके पीछे तकनीकों का प्रभावकारी उपयोग और श्रमिकों का परिश्रम और कौशल है – जो कि श्रमिक–आधारित निर्माण प्रक्रिया के लिए बेहद ज़रूरी गुण हैं। उदाहरण के लिए, एक साधारण मैकाडम सड़क की गुणवत्ता और कीमत उसमें बनाई गई विभन्न परतों की मोटाई, लाल बजरी मिश्रण की प्रभाविता, तार कितना अच्छे से मिश्रित हआ है, और मेटल की परत समय से लगी या नहीं, इन सब पहलुओं पर निर्भर करती है। हर कदम पर श्रमिकों के कौशल, परिश्रम, और प्रतिबद्धता की ज़रूरत होती है। इसी प्रकार, निर्माण कार्य में कंक्रीट बनाने में भी श्रमिकों के बीच करीबी सहयोग की ज़रूरत होती है। अत:, श्रमिकों का कौशल और प्रतिबद्धता – सिर्फ सुपरवाइज़र या प्रबंधक ही नहीं – इस सहकारी समिति के प्रमुख गुण हैं। उरलुंगल सहकारी समिति ने निर्णय प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी को प्राथमिकता दी है, और अच्छा वेतन तथा सकारात्मक कार्यस्थल परिस्थितियों को बनाए रखती है।

मशीनीकरण के कारण कार्यस्थलों पर बड़े बदलाव आए हैं, और निर्माण कार्य में कई कामों के लिए अब श्रमिकों की ज़रूरत नहीं पड़ती। इसके अलावा, मशीनीकरण के कारण काम की गति में आए बदलाव के कारण श्रमिकों की भागीदारी और एकजुटता में भी फर्क़ आ सकता है। इन संभावित खतरों को पहचानते हुए, सहकारी समिति ने तीन तरीकों से लोकतंत्र को गहरा किया है, जिसमें पारदर्शिता के लिए और गहरी वचनबद्धता, खुली चर्चाएं; श्रमिकों द्वारा दिए गए फीडबैक को प्राथमिकता देना; और अपने कौशल विकास कार्यक्रमों को बेहतर बनाना शामिल है।

एक और बड़ा खतरा है आधुनिक श्रमिकों में वचनबद्धता कम होना। हाल तक, ज़्यादातर सदस्य सहकारी समिति शुरु करने वालों के रिश्तेदार थे, लेकिन आज कई नए श्रमिकों के बीच कोई रिश्तेदारी नहीं है। कई भागीदार वार्षिक आम बैठकों में होने वाली चर्चाओं की गुणवत्ता के बारे में चिंतित हैं, और श्रमिकों द्वारा अतिरिक्त काम करने की तत्परता भी कम हो गई है। इस बदलाव के लिए कोई आसान समाधान नहीं है, बजाए इसके कि सहकारी समिति के इतिहास के बारे में नियमित रूप से श्रमिकों को जानकारी दी जाए, उसकी परंपराओं और बलिदानों के बारे में, और उन मूल्यों के बारे में जिन्होंने उरलुंगल सहकारी समिति को वो दर्जा दिया है जो आज उसके पास है। इसलिए, उरलुंगल सहकारी समिति का वास्तव में सहकारी बने रहना राजनीतिक महत्व रखता है। बाज़ारीकरण के मूल्यों के वर्चस्व वाले समाज में उसे सहकारिता के मूल्यों को बनाए रखना होगा।

लेखक : मिशैल विलियम्स

वेबसाइट : http://globaldialogue.isa-sociology.org/uralungal-indias-oldest-worker-cooperative/

छोटे सतत प्रयासों से औरतों के जीवन में बड़े बदलाव

उत्तराखंड के पांच छोटे गांवों की औरतों ने, गैर–सरकारी संस्थाओं की मदद से पानी संजोने, सब्जी के बगीचों और जैविक कृषि के माध्यम से अपने जीवन में बड़ा बदलाव लाया है।

''पहले काफी दिनों तक हल्की–हल्की बारिश हुआ करती थी, लगातार नहीं। वह हमारे खेतों के लिए अच्छी थी और इससे पहाड़ी

के नीचे के झरनों में पानी भरता था, लेकिन अब यह सब बदल गया है'', ऐसा कीड़ी देवी ने बताया जो कि उत्तराखंड के हिमालयी गांव मोआन में रहती हैं। कठिन पहाड़ी रास्ते के कारण, इस गांव तक पहुंचना बहुत मुश्किल है। ''पिछले सालों में बारिश अनियमित और असामयिक हो गई है। वह हमारे खेतों में नुक्सान करने लगी है और अब हमें पानी बहुत मुश्किल से मिलता है।''

इसमें अनीता बहुगुना, जो टिहरी गढ़वाल जिले में चम्बाघाट झरने से ६ मिलामीटर ऊपर बसे, पास के पहाड़ी गांव रानीचौरी में रहती हैं, जोड़ती हैं, ''अब सर्दियों में बहुत कम बर्फ गिरती है जिसके कारण हमारे पानी के झरने धीरे–धीरे खत्म होते जा रहे हैं।''

लेकिन वर्ष २०११ में, उनके जीवन में एक सकारात्मक मोड़ आया जब विमेन ऐक्शन फॉर डेवलपमेंट गैर–सरकारी संस्था ने चम्बा के पास ५ गांवों में अपनी परियोजना की शुरुआत की। इस परियोजना का उद्देश्य था औरतों को ''जलवायु नेतृत्वकर्ताओं'' के रूप में प्रशिक्षित करना जिससे कि पहाड़ी समुदाय जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के बेहतर तरीके से समाधान निकाल सकें और घटते हुए प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावकारी तरीके से उपयोग कर सकें। जल्द ही, कुछ मकानों की छतों पर पानी संजोने के ढांचे बना दिए गए जिससे कि सबसे कीमती प्राकृतिक संसाधन – पानी – को इकट्ठा और बचाया जा सके।

कीड़ी और अनीता जैसी औरतों के लिए, जो अपने राज़मर्रा के जीवन में प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं, बारिश में थोड़े से बदलाव से ही उनके खेतों के लिए खतरा पैदा हो जाता है और पानी तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों को इकट्ठा करने में उनका श्रम भी बढ़ जाता है। बारिश के कारण जटिल पहाड़ी रास्तों पर चलने के खतरे भी बढ़ जाते हैं जिन पर यह औरतें (और अक्सर छोटे बच्चे) पानी से भरी भारी बाल्टियां और मटके लेकर ऊपर नीचे जाते हैं।

''हम इस प्रयास से बहुत खुश हैं। इससे हमारे जीवन में बहुत बड़ा बदलाव आया है। पहले, बच्चों को पढ़ने के लिए कोई समय नहीं मिल पाता था क्योंकि स्कूल से आते ही उन्हें पानी लेने जाना पड़ता था। लेकिन जब से हमने पानी को संजोना शुरु किया है, बच्चे अब ट्यूशन पढ़ने के लिए जा सकते हैं,'' बहुगुना ने बताया।

इसके कई सबूत मिल चुके हैं कि जलवायु परिवर्तन के प्रभाव आदमियों के बदले औरतों पर ज़्यादा होते हैं, खासकर उनकी सामाजिक भूमिकाओं के कारण। यही कारण था कि WAFD ने INSEDA के साथ मिलकर इस क्षेत्र में औरतों को सतत विकास के लिए नेतृत्व लेने में सहयोग किया। उनकी सहभागिता ईको–विलेज कार्यक्रम के अंतर्गत, स्वयंसेवी आधारित प्रयास के ज़रिए, औरतों के जीवन में बदलाव लाने की दिशा में काम कर रही है।

चित्र : अपने खाद के ढेर के साथ अनीता (फोटो : WAFD)

बांस की बुनाई से बनी टोकरियों से बारिश के पानी को संजोने के टैंक बनाए जाते हैं, जिन्हें मज़बूती और रिसाव रोकने के लिए सीमेंट और कंक्रीट की एक परत दी जाती है। ३,००० लीटर क्षमता के ये टैंक, घरों की छतों से पानी इकट्ठा करते हैं, जिन्हें पानी की कमी वाले मौसम में उपयोग किया जा सकता है। ''WAFD आर्थिक सहयोग देता है और हम श्रम तथा हर टैंक के लिए २५ कट्टे रेत और ६ कट्टे सीमेंट (१ कट्टा २५ किलो का होता है) का योगदान करते हैं,'' देवी ने गुरियाली गांव जाने के रास्ते में हमें बताया, जिस गांव में क्षेत्र में सबसे ज़्यादा पानी की कमी है। इस कारण से इस क्षेत्र के ज़्यादातर पानी के टैंक (कुल ४६ में से २२) इसी गांव में लगाए गए हैं। WAFD की ज़रीन माइल्स ने जीमजीपतकचवसमण्दमज को बताया : ''गुरियाली में पानी का कोई स्रोत नहीं है और औरतों को पानी लाने के लिए रोज़ ३ कि.मी. दूर जाना पड़ता है। लेकिन पानी संजोने के टैंकों के बनने के बाद, अब उन्हें सप्ताह में केवल एक या दो बार ही जाना पड़ता है।''

गुरियाली गांव में पहले जो प्राकृतिक पानी का स्रोत था, वो कुछ समय पहले सूख गया और अब गांव वालों के पास बारिश के पानी पर निर्भर करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है, और बारिश भी अनियमित होती जा रही है। ऊंचाई पर बसे होने के कारण, इस गांव तक पाइपलाइन बनाने में भी काफी समय लगा। उसमें भी जब पानी आता है, तो एक पतली धार में आता है और गांव वाले ६० घरों के बीच एक नल्के से पानी भरने के लिए धक्कामुक्की करते हैं।

जल संरक्षण की सफलता को देखते हुए, गांव में इन ढांचों को बनाने की मांग बहुत बढ़ गई है, खासकर औरतों द्वारा जिन्हें झरने से पानी भरने के लिए दिन भर में लगभग १० चक्कर ऊपर–नीचे लगाने पड़ते हैं। पुष्पा, गुरियाली की एक किसान, अपना भार कम करने के लिए उसके घर में पानी का टैंक बनने का बेसब्री से इंतज़ार कर रही है। उसे खड़ी ढाल पर पहाड़ में कटी हुई ऊंची सीढ़ियां उतर कर, अपने खेतों से होकर पानी भरने जाना पड़ता है।

''पानी की बहुत बड़ी समस्या है और अब हमारे पास पालतू जानवर भी हैं, कुछ बच्चों का तो यही काम है कि वो सारे दिन पानी भर कर लाते हैं क्योंकि मुझे खेतों में काम करना पड़ता है। हमें सुबह चार चक्कर (तीन कि.मी. दूर) और चार चक्कर शाम को लगाने पड़ते हैं। हमें आशा है कि जल्दी ही हमारा पानी का टैंक बन जाएगा जिससे कि हम चैन की सांस ले सकें,'' पुष्पा ने मटर की फसल काटते हुए कहा।
चित्र : मटर की फसल काटते हुए पुष्पा (फोटो : जूही चौधरी)

WAFD द्वारा पानी संजोने और जैविक खेती का कार्यक्रम चलाए जाने के बाद, अब औरतें अपने सब्ज़ी के खेतों और अनाज के खेतों की उत्पादकता भी बढ़ा पाई हैं, जिससे उनकी जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशीलता कम हुई है और खाद्य सुरक्षा भी बढ़ी है। औरतों को खाद बनाने के लिए बांस की टोकरियां बनाने का प्रशिक्षण दिया गया है और पांच गांवों – रानीचौरी, सावली, मोआन, गुरियाली और जगधर – के लगभग सभी लोगों ने कीटनाशकों और रसायनिक उर्वरकों को छोड़कर जैविक खेती करनी शुरु कर दी है। इससे पैदावार बढ़ी है, जिसके कारण आर्थिक स्थिरता और श्रम में कमी हुई है।

''हमारे सब्ज़ी के खेत तो पहले से ही थे लेकिन हमें जानकारी नहीं थी; हम ऐसे ही बीज फेंक दिया करते थे जिससे कुछ खास पैदावार नहीं मिलती थी। लेकिन अब हमें पौधों के लिए अलग–अलग क्यारी बनाया सिखाया गया है, जिससे कि अगर एक फसल नाकामयाब भी होती है, तब भी हमें भूखा नहीं रहना पड़ता और हम ज़रूरत पड़ने पर गांव वालों के साथ अपनी अतिरिक्त पैदावार बांट भी सकते हैं। इसे हम बेच भी सकते हैं,'' सावली गांव की कृष्णा का कहना था। ''अब हम खुद पर निर्भर हो गए हैं और अपनी ज़रूरत की लगभग हर चीज़ अपने खेतों में पैदा कर सकते हैं, जिसमें मसाले भी शामिल हैं। हमें बस चीनी, तेल, चायपत्ती और जीरा ही बाज़ार से खरीदना पड़ता है।''

जैविक कृषि शुरु कर देने से लोगों के हर मौसम में लगभग ४०० (६.२ डॉलर) रुपए की बचत होती है, जो वे पहले कैमिकल और कीटनाशकों पर खर्च किया करते थे। मिट्टी की गुणवत्ता भी बेहतर हुई है। अलग अलग फसलों और बेहतर उत्पादकता तथा स्वाद के कारण, वे अब प्रति वर्ष अपने सब्ज़ी के खेतों से ही रु.४,५०० – ८,००० (७० – १२४ डॉलर) तक कमा लेते हैं। कुछ अप्रत्यक्ष लाभ भी हो रहे हैं जिनके कारण गांव जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना करने में ज़्यादा सक्षम हो गया है।

''हम जब कैमिकलों का उपयोग करते थे, तो हमें खेतों को हर तीन से चार दिनों में पानी देना पड़ता था, लेकिन जैविक खाद के साथ १५ से २० दिनों में ही पानी देना पड़ता है। इससे हमारा काफी श्रम और पैसा बचता है,'' बहुगुना ने बताया। ''इसके अलावा, मिट्टी भी कड़क हो गई थी और हमें किराए पर उपकरण लाकर कई बार मिट्टी को जोतना पड़ता था, लेकिन जैविक खाद से मिट्टी बलुई, झरझरी बनी रहती है और सब्ज़ियां ज़्यादा स्वाद पैदा होती हैं।''

स्रोत : http://indiaclimatedialogue.net/2017/11/02/small-initiative-changes-lives-women-big-way/

◆◆

५. विशेष लेख : प्रतिरोध के रूप में विकल्प

ऐक्ट वन – बांध विरोधी, लोक समर्थक

तेन्ज़िंग लेप्चा, अफेक्टेड सिटिज़न्स ऑफ तीस्ता (ऐक्ट), को अपने पिछले वर्ष के काम पर बहुत गर्व है। ''यह सब झाड़ – झंखार से भर गया था,'' उन्होंने एक व्यवस्थित खेत की तरफ इशारा करते हुए कहा। ''मैंने यह खेत खुद निकाले हैं।'' उन्होंने हमें पानी भर कर रखने के लिए सावधानी से खोदा हुआ तालाब, सिंचाई की व्यवस्था, खाद के ढेर, सफाई से रखी हुई मटर और सरसों की कतारें दिखाईं। मेरे लिए उन्हें पहचानना मुश्किल हो रहा था, इससे पहले जब मैं उनसे मिला था तो वे बेपरवाह, महीनों से अनशन करने के कारण एकदम कमज़ोर थे।

तेन्ज़िंग, ग्यात्सो और दावा उन लोगों में से हैं जिन्होंने वर्ष २००७ – २००९ तक चौकी अनशन किया था और उनकी मांग थी कि ज़ोंगू क्षेत्र में आने वाली जल विद्युत परियोजनाओं को खारिज किया जाए। उनका अनशन १५० से अधिक दिनों तक चला था। तेन्ज़िंग याद करते हैं कि वे कैसे इस आंदोलन में जुड़े थे। वे कहते हैं, ''हमने एक बैठक में भाग लिया जहां से हमारी बांध संबंधी मुद्दों के प्रति आंखें खुलीं। मैंने १८ सितंबर, २०१५ को अपनी पहली जन सुनवाई में भाग लिया। वह सुनवाई ज़ोंगू में बनने वाली पनांग परियोजना के विरोध में थी, और मुझे हिरासत में ले लिया गया। दावा के साथ भूख हड़ताल में मैं भी था। यह दो चरण में हुआ था – पहले चरण में, हमने ६४ दिन तक अनशन किया और दूसरे चरण में ९६ दिन तक।''

इस भूख हड़ताल, और अन्य विरोध मार्चों, अनगिनत याचिकाओं और ऐक्ट द्वारा आयोजित पेशकशों के कारण हम तीस्ता पर प्रस्तावित बांधों के विषय पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीश ध्यान आकर्षित करने में सफल हुए। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप, ऐक्ट भारत में पहली बार, किसी भी नदी की भार क्षमता का अध्ययन करवाने में सफल हुआ। इस रिपोर्ट और विरोध प्रदर्शनों के परिणामस्वरूप १० बांधों का निर्माण रोका गया।

लेकिन, लोगों का संघर्ष भूख हड़ताल खत्म होने पर खत्म नहीं हुआ। दो प्रस्तावित बांध ज़ोंगू क्षेत्र में हैं, और लोग इन बांधों को रोकने के लिए संगठित हो रहे हैं।

बांधों के बिना भी विकास संभव है

चित्र : मायल ल्यांग का प्रवेश द्वार (स्रोत : Mayallyang.com)

ऐक्ट सदस्यों का मानना है कि विरोध के साथ–साथ, उन्हें लोगों के सामने यह भी साबित करना होगा कि बांधों के बिना भी विकास संभव है। तो उनमें से कुछ लोग इसका उदाहरण देने के लिए अपने जीवन में ऐसी वैकल्पिक आजीविकाओं को जीकर दर्शाते हैं, जिन से आर्थिक विकास हो सकता है। यह स्वर्गीय शंकर गुहा नियोगी के सिद्धांतों से प्रेरित है, जो १९७० के दशक में स्थापित छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के नेता थे। अपने आखिरी लेख, 'हमारी प्रकृति' में नियोगी ने कहा था कि संघर्ष और पुनर्निमाण साथ–साथ चलना चाहिए। उन्होंने लिखा था, ''जहां भी अन्याय और दमन है, वहां विरोध तो होगा ही। विनाश की प्रक्रिया का विरोध निर्माण की रचनात्मकता से किया जा सकता है''। उनके नारे ''संघर्ष व निर्माण'' ने १९८० और १९९० के दशकों के कार्यकर्ताओं और आंदोलनों की पूरी पीढ़ी को प्रेरित किया।

ग्यात्सो लेप्चा, ऐक्ट के सचिव, एक सुंदर और सफल होमस्टे चलाते हैं जिसका नाम है मायल ल्यांग। ग्यात्सो कहते हैं, ''मैं पेशे से वकील

हूं, और कुछ समय तक मैंने वकालत की, फिर मैं आंदोलन में शामिल हो गया। मेरा होमस्टे सरकार द्वारा पारिस्थितिकीय संवेदनशील और सांस्कृतिक महत्व रखने वाले इस क्षेत्र में विनाशकारी परियोजनाएं लाने के प्रयास के खिलाफ़ एक शांत विरोध का प्रतीक है। 'बिना पारिस्थितिकीय, सांस्कृतिक और मानवीय कीमतों के, इस तरह से भी विकास किया जा सकता है' यह कहने का एक अलग तरीका है। ज़ोंगू में पासिंगडांग गांव का यह होमस्टे तब से खबरों में छा गया जब नौरवे के युवराज और राजकुमारी अपनी छुट्टियों में यहां रह कर गए। इस होमस्टे का सिक्किम की नियंत्रक लेखा परीक्षक रिपोर्ट में भी वर्णन है और इससे प्रेरित होकर राज्य सरकार ने सिक्किम में सतत पर्यटन के रूप में होमस्टे को बढ़ावा देना शुरु किया।

कृषि भी मुनाफ़ा देती है

तेन्ज़िंग अब अपनी खेती की जड़ो ं में वापस लौट गए हैं। वे कहते हैं, ''आप मिट्टी के जितना करीब होते हैं, उतना ही करीबी आपका उससे जुड़ाव हो जाता है। कृषि में मेरे प्रयास दूसरे लोगों को भी (ऐसा करने के लिए) प्रोत्साहित करेंगे।'' तेन्ज़िंग का कृषि शुरु करने का निर्णय भी जल विद्युत परियोजनाओं के विरोध से संबंधित है। वे समझाते हैं, ''जब वे (सरकार) 'आर्थिक विकास' शब्द का प्रयोग करते हैं तो उसका मतलब केवल जल विद्युत नहीं होना चाहिए। हम बहुत खुशकिस्मत हैं कि हमारे पास इतने प्राकृतिक संसाधन हैं। हमारे पास बहुत सारे विकल्प हैं। अब आप देखें, सिक्किम सरकार ने राज्य को जैविक राज्य घोषित कर दिया है। हमारे पास क्षमता है। इसलिए, अब समय आ गया है कि सरकार आने वाली पीढ़ियों के विकास के लिए इस क्षमता का उपयोग करे।''

मिन्कट लेप्चा दिल्ली में बस गई थीं, जब उन्हें ग्यात्सो ने ज़ोंगू में चल रहे संघर्षो के बारे में बताया। अब मिन्कट भी आंदोलन में जुड़ गई हैं और ज़ोंगू की सुदंरता और मूल्यों को दर्शाने के लिए अपनी कला का इस्तेमाल करती हैं, जिससे कि घाटी से बाहर के लोग देख सकें कि बांधों के कारण क्या-क्या खो जाएगा। मिन्कट की इस मुद्दे पर बनाई फिल्म ने घाटी के बांध पक्षीय लोगों को समझाने में मदद की है। वे कहती हैं, ''यह एकमात्र फिल्म है जो घाटी के निचले और ऊपरी क्षेत्र के लोगों को जोड़ती है। जब मैंने यह कहा कि तीस्ता नदी के किनारे बसे समुदायों की रीड़ की हक्की की तरह है, तो मुझे लोगों की आंखों में स्वीकार्यता नज़र आई।'' मिन्कट की फिल्म, तीस्ता की आवाज़ें, मार्च २०१८ में ब्राज़ील में आयोजित आठवें विश्व जल फोरम में दिखाई गई १० फिल्मों में से एक थी।

मिन्कट की तरह ही, दावा लेप्चा भी ज़ोंगू पर आधारित फिल्में बना रहे हैं। उन्होंने अपनी जीविका की शुरुआत मानव विज्ञान वृत्तचित्र फिल्मों से की थी जिनमें वे लेप्चा जीवनशैली को दर्शाते थे। उनकी ऐसी ही एक फिल्म, रिच्युअल जर्नीज़ में मेराक, एक बोन्थिंग (धर्मात्मा) के जीवन के सात साल का दैनिक जीवन दिखाया गया था। हाल ही में, दावा ने पहली लेप्चा फीचर फिल्म बनाई जिसका नाम था धोक्बू - द कीपर। दार्जीलिंग क्रोनिकल के साथ एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा, ''विश्व में हर आदिवासी समुदाय की तरह ही, हम लेप्चा लोग भी प्राकृतिक देवताओं और जंगलों तथा जंगली जीवों की सुरक्षा में विश्वास करते हैं। इस फिल्म में एक काल्पनिक किरदार दिखाया गया है जो सिक्किम के जंगली जीवन का पालक है। यह फिल्म मेरे आंदोलनकारी जीवन के समय की सोच से प्रेरित है।''

समाचार को दूर-दूर तक पहुंचाना

एक दशक से भी ज़्यादा समय तक किसी आंदोलन को जीवंत रखने के लिए बहुत काम करना पड़ता है। सार्वजनिक गतिविधियां, जैसे कि विरोध बैठकें और मार्च, धरने और अनशन, प्रैस विज्ञप्तियां और खुले पत्र तो केवल ऊपर से दिखने वाली गतिविधियां हैं। इससे भी ज़्यादा निर्मम और थकाने वाले काम है शांतिपूर्वक लगातार सरकारी गतिविधियों और निर्णयों की खबर रखना, दस्तावेज़ और सबूत इकट्ठे करना, सहयोगियों से संपर्क बनाए रखना और अपने विरोधियों से मित्रता रखना। वे सिक्किम में जल विद्युत के मुद्दे पर बाहर के लोगों को शामिल करने से भी नहीं कतराते। ग्यात्सो कहते हैं, ''मैं ध्यान रखता हूं कि जो अतिथि यहां आते हैं वे बांधों पर आयोजित हमारी कम-से-कम एक वार्ता में भाग ज़रूर लें। मैं उन्हें एक वृत्तचित्र दिखाता हूं और उससे बातचीत शुरु हो जाती है।''

जल विद्युत के अलावा, वे क्षेत्र के अन्य मुद्दों पर भी चर्चाएं करते हैं। ग्यात्सो ने पंचायत प्रधानों की एक बैठक आयोजित की जिसमें कचरे और ज़ोंगू के लिए शून्य-अपशिष्ट के विषय पर चर्चा की गई। मिन्कट देश भर में भ्रमण करके कहानियां सुनाती हैं और अपनी फिल्म दिखाती हैं और उनका प्रयास है कि वे विशेषत: स्कूली बच्चों के साथ पर्यावरणीय मुद्दों पर चर्चा करें।

विकल्प ढूंढने के अपने निर्णय के बारे में सोचते हुए ग्यात्सो नियोगी के सिद्धांतों को दोहराते हैं। ''मुझे अहसास हुआ कि कार्यकर्ताओं को सरकार और लोग हमेशा विकास-विरोधी की नज़र से देखते हैं। अपने छोटे से तरीके से, मैं उसे बदलना चाहता हूं। कुछ हद तक, यह आरोप ठीक भी है। लोगों के अपने सपने होते हैं। यह ज़ोंगू है, तो यहां पर और क्या अवसर मिल सकते हैं? लोगों को नौकरियां और अन्य चीज़ें चाहिए। इसी पर मैंने सोचा कि जब हम आंदोलन करते हैं, तो हमें केवल विरोध नहीं करना चाहिए। हमें नए विकल्पों के बारे में भी सोचना चाहिए, जो वैकल्पिक आजीविकाएं दिखा सकें।'' इटली के

दार्शनिक एन्टोनियो ग्रामसी के शब्दों में कहा जाए तो, आंदोलनकारी लोगों में ''विरोधात्मक नेतृत्व'' पैदा कर रहे हैं।

लेखक : के.जे.रॉय

स्रोत : http://www.indiawaterportal.org/articles/act-one-anti-dam-pro-people

पाठकों के लिए संदेश:

प्रिय पाठकों, यदि आप समुदाय व संरक्षण की प्रति किसी अलग पते पर प्राप्त करना चाहते है तो कृपया हमें अपना पता kvoutreach@gmail.com पर या नीचे लिखे पते पर भेज दें।

कल्पवृक्ष

डकुमेंटेशन एंड आउटरीच सेंटर, अपार्टमेंट ५, श्री दत्ता कृपा, ९०८, डेक्कन जिमखाना,

पुणे ४११००४. महाराष्ट्र – भारत

वेबसाइट : www.kalpavriksh.org

समुदाय व संरक्षण : जैव विविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा संस्करण अंक ९, नं १. दिसंबर २०१७ – मई २०१७८

संकलन एवं संपादन : मिलिन्द वानी

संपादकीय सहयोग : अनुराधा अर्जुनवाडकर

अनुवाद : निधि अग्रवाल

कवर फोटो :

अन्य फोटो :

प्रकाशक :
कल्पवृक्ष,
अपार्टमेंट ५, श्री दत्ता कृपा, ९०८,
डेक्कन जिमखाना, पुणे–४११००४.
फोन : ९१–२०–२५६७५४५०,
फैक्स : ९१–२०–२५६५४२३९
ई–मेल : KVoutreach@gmail.com,
वेबसाइट : www.Kalpavriksh.org

आर्थिक सहयोग : मिजेरिओर, आचेव, जर्मनी

निजी वितरण के लिये

प्रकाशित विषयवस्तु (Printed matter)

सेवा में,